हिन्दी प्रचार पुस्तकमाला, पुष्प 149

पद्य-प्रवेशिका

(चुने हुए पद्यों का संग्रह)



प्रकाशक

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा

मद्रास

दूसरा संस्करण :
दूसरा पुनर्मुद्रण
सितंबर, 1958
5

दाम 1—8—0

O. No. 85
मुद्रक : हिन्दी प्रचार प्रेस, त्यागरायनगर, मद्रास-17

अपनी ओर से

राजभाषा हिन्दी का साहित्य आज समय की गति के अनुकूल अपने सभी अंगों को बड़ी तेज़ी के साथ विस्तृत करता हुआ आगे बढ़ रहा है। संसार-भर में चलनेवाली विविध विचारधाराओं को लेकर हिन्दी के साहित्यिक अपनी परिमार्जित रचनाओं के द्वारा हिन्दी साहित्य को अलंकृत कर रहे हैं।

हिन्दी के काव्य-क्षेत्र में ऐसी नवीन विचारधाराओं को लेकर काव्य रचनेवाले कई युवक कविगण तो आ ही गये, साथ ही, पुराने कवियों ने भी, चूँकि कवि होने के कारण समय की माँग को समझना उनका कर्तव्य है, अपनी रचनाओं में एक स्पष्ट परिवर्तन अपनाया है।

यह नया संग्रह 'पद्य-प्रवेशिका' ऐसी ही बदलती हुई विचारधारा का परिचायक है। इसमें हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ पुराने कवियों की बदलती हुई भावधारा की कविताओं के साथ कुछ युवक कवियों की रचनाओं का भी हमने दिशादर्शन कराने की कोशिश की है।

उपरोक्त दृष्टि से यह संग्रह संपूर्ण तो नहीं कहा जा सकता; फिर भी, चूँकि यह सभा की प्रवेशिका परीक्षा तथा विविध विश्वविद्यालयों की इंटरमीडियेट और विद्वान-प्रवेशिका के स्टैण्डर्डों को ध्यान में रखकर तैयार किया गया है, इसलिए उस सीमा के अन्तर्गत ज़्यादा से ज्यादा जितनी दी जा सकती हों, हमने रचनाएँ दी हैं।

इस संग्रह के तीन भाग हैं—हिन्दी, उर्दू तथा प्राचीन। हिन्दी व उर्दू खण्डों में ऊपर बताये गये दृष्टिकोण से हिन्दी तथा उर्दू के कवियों की रचनाएँ दी गयी हैं। जिन परीक्षाओं के लिए यह संग्रह तैयार किया गया है उनके लिए 'प्राचीन पद्य' का थोड़ा-सा ज्ञान हो जाना आवश्यक होने से उसका भी थोड़ा अंश इस संग्रह में दिया गया है।

इस संग्रह में आधुनिक पद्य की क़रीब 750 पंक्तियाँ तथा प्राचीन की लगभग 200 पंक्तियाँ दी गयी हैं।

विद्यार्थियों को इसे सब तरह से उपयोगी बनाने के उद्देश्य से इसमें कठिन-शब्दार्थ और जहाँ बहुत ज़रूरी हो वहाँ भावार्थ और साथ ही कवि-परिचय भी दिया गया है। आशा है, यह संग्रह सभी हिन्दी-प्रेमियों को पसन्द आएगा।

इस संग्रह में जिन कवियों की रचनाएँ ली गयी हैं उन सबको दक्षिण के असंख्य पाठक-पाठिकाओं की ओर से तथा अपनी ओर से भी हम हार्दिक कृतज्ञता समर्पित करते हैं।

—प्रकाशक

विषय-सूची

पहली क्यारी

पृष्ठ

1. **विश्वराज्य**—श्री मैथिलीशरण गुप्त ... 1
2. **झरना**—श्री माखनलाल चतुर्वेदी .. 5
3. **भारतवर्ष**—श्री जयशंकर 'प्रसाद' .. 8
4. **माँ**—श्री ठाकुर गोपालशरण सिंह .. 12
5. **ओस**—श्री गुरुभक्त सिंह 'भक्त' ... 16
6. **गत दिवस**—श्री सियारामशरण गुप्त ... 19
7. **कागज़ी नाव**—श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' . 22
8. **ध्वनि**—श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' .. 25
9. **वह बुड्ढा**—श्री सुमित्रानंदन पंत .. 28
10. **आकांक्षा**—श्री मोहनलाल महतो 'वियोगी' .. 33
11. **लक्ष्मीबाई की समाधि पर**—श्री सुभद्राकुमारी चौहान ... 36
12. **खादी-गीत**—श्री सोहनलाल द्विवेदी ... 39
13. **अधिकार**—श्रीमती महादेवी वर्मा . 42
14. **जो बीत गयी**—श्री हरिवंशराय 'बच्चन' ... 45
15. **भीख**—श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' .. 49
16. **कवि-कामना**—श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' ... 52
17. **प्रात-प्रदीप**—श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' .. 55
18. **विश्वास और सपना**—श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' ... 59
19. **संघर्ष**—श्री शिवमंगल सिंह 'सुमन' ... 62
20. **फूल और काँटा**—श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' 65

दूसरी क्यारी
(उर्दू)

पृष्ठ

1. **एक आरज़ू**—डा० शेख मुहम्मद 'इकबाल' 70
2. **चंद शेर**—मीर तकी 'मीर' 73
3. **चुने हुए शेर**—'अकबर' इलाहाबादी ... 76
4. **क़ौम की इज्ज़त**—मौलाना अल्ताफ हुसैन 'हाली' ... 80
5. **क़ौमी गीत**—'साग़र' निजामी ... 84
6. **मर्द**—'जोश' मलीहाबादी . 87
7. **आखिरी उम्मीद**—अख्तर शीरानी ... 90
8. **रुबाइयाँ**—प्रो० रघुपति सहाय 'फिराक़' .. 94
9. **तहज़ीब की गंगा**—सरदार जाफ़री .. 97
10. **रात के राही**—साहिर लुधियानवी .. 101

तीसरी क्यारी
(प्राचीन पद्य)

1. कबीरदास के दोहे .. 106
2. गोस्वामी तुलसीदास—दोहे और पद .. 112
3. बिहारीलाल के दोहे .. 118
4. रहीम के दोहे .. 123
5. वृंद के दोहे ... 127
6. गुरु नानकदेव के पद .. 131
7. दादू दयाल ... 134
8. मलूकदास ... 137

पहली क्यारी

1. श्री मैथिलीशरण गुप्त

आपका जन्म सन् 1886 ई० में चिरगाँव, ज़िला झाँसी (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। खड़ी बोली के श्रेष्ठ कवियों में आपका स्थान सबसे आगे है। आधुनिक हिन्दी कविता जिस समय घुटनों के बल पर चल रही थी, उसी समय आपका प्रादुर्भाव हुआ और आपने उसे चलना-दौड़ना सिखाया। आपका सहारा पाकर ही वह नन्हीं कविता-बाला इस लायक़ बनी कि छायावादी और प्रगतिवादी युगों को पार कर आज 'प्रयोगवाद' के साथ अठखेलियाँ कर रही है। भाषा के निर्माण और परिष्कार में भी आपका महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

राष्ट्रीय जागरण के साथ ही आपकी कविता का विकास हुआ, इसलिए राष्ट्र-प्रेम की भावनाएँ आपकी रचानाओं में सर्वत्र पायी जाती हैं। राष्ट्र-प्रेम के साथ ही संस्कृति के गौरव को चित्रित करने की ओर भी आपका ध्यान विशेष रूप से रहा है।

आपकी राष्ट्रीय कविताओं का पहला संग्रह 'भारत-भारती' के नाम से प्रख्यात है। इसके अतिरिक्त आपके दर्जनों काव्य-ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें 'यशोधरा', 'पंचवटी', 'जयद्रथ-वध' (खंडकाव्य) और 'साकेत' (महाकाव्य), 'जय भारत' (प्रबंधकाव्य), 'पृथ्वीपुत्र' आदि प्रसिद्ध हैं।

विश्वराज्य

कहो, तुम्हारी जन्मभूमि का है कितना विस्तार ?
भिन्न-भिन्न यदि देश हमारे तो किसका संसार ?

धरती को हम काटें-छाँटें,
तो उस अंबर को भी बाँटें ?

एक अनल है, एक सलिल है, एक अनिल संसार !
कहो तुम्हारी जन्मभूमि का है कितना विस्तार ?

एक भूमि है, एक व्योम है,
एक सूर्य है, एक सोम है ;

एक प्रकृति है, एक पुरुष है अगणित रूपाकार ।
कहो, तुम्हारी जन्मभूमि का है कितना विस्तार ?

ठौर-ठौर का गुण अपना है,
ऋतुओ का कँपना-तपना है ।

समशीतोष्ण एकरस हमको होना है अविकार!
कहो, तुम्हारी जन्मभूमि का है कितना विस्तार?

अलग-अलग हैं सभी अधूरे,
सब मिलकर ही तो हम पूरे।

एक दूसरे का पूरक है एक मनुज-परिवार।
कहो, तुम्हारी जन्मभूमि का है कितना विस्तार?

स्वर्णभूमि यदि अलग तुम्हारी,
तो हम भी लौहायुधधारी।

कैसे हो सकता है फिर इस विग्रह का परिहार?
कहो, तुम्हारी जन्मभूमि का है कितना विस्तार?

परित्राण का एक मंत्र है,
विश्वराज्य जो लोकतंत्र है;

सब वर्गों का, सब धर्मों का जहाँ एक अधिकार।
कहो, तुम्हारी जन्मभूमि का है कितना विस्तार?

एक देह के विविध अंग हम,
दुखें-पुखें सब एक संग हम।

पद्य-प्रवेशिका

लगे एक के क्षत पर सबका स्नेहलेप सौ बार ।
कहो, तुम्हारी जन्मभूमि का है कितना विस्तार ?

कठिन-शब्दार्थ

अबर - आसमान

लौहायुधधारी - सामरिक साधनो से संपन्न, युद्धप्रिय

विग्रह - सघर्ष

परित्राण - रक्षा

दुखे पुखे - (हम) दुख के कारण क्षीणता का अनुभव करे सुख के कारण सतोष का ।

सग - साथ

क्षत - घव

स्नेहलेप - तेल मलना, स्नेहपू सहायता करना

2. श्री माखनलाल चतुर्वेदी

आप खंडवा (मध्यप्रदेश) के निवासी हैं। आपका जन्म सन् 1888 ई० में हुआ था। राष्ट्रीय धारा के कवियों में गुप्तजी के बाद आपका ही स्थान आता है, लेकिन द्विवेदीयुग के प्रभाव से आप सर्वथा मुक्त हैं। आपकी शैली बिलकुल मौलिक है।

आप 'एक भारतीय आत्मा' नाम से कविताएँ लिखते हैं। यह उपनाम ही राष्ट्र के प्रति आपके गौरव और स्नेह का परिचय दे देता है। राष्ट्र का दर्द आपकी कविताओं में इस तरह उभर आया है कि कहीं-कहीं उनमें रहस्यमयता का आभास होता है। मन की सुकुमार वृत्तियों का संकेत करनेवाली मार्मिक रचनाएँ करने में आप सिद्धहस्त हैं।

राजनैतिक आन्दोलनों में सक्रिय योगदान देने के कारण आपको कई बार जेल जाना पड़ा। अधिकतर कविताएँ आपने जेल में ही लिखीं। 'हिमतरंगिनी', 'हिमकिरीटिनी' और 'माता' नाम से आपकी कविताओं के संग्रह प्रकाशित हुए हैं।

झरना

किस निर्झरिणी के धन हो, पथ भूले हो किस घर का
है कौन वेदना, बोलो, कारण क्या करुण स्वर का ?
मेरी वीणा की कटुता धो डाल तरल तारों से,
जो मुझ-सा पागल होके बह उठे हृदय-द्वारों से ।
चढकर, गिरकर, फिर उठकर कहता तू अमर कहानी,
गिरि के अंचल में करता कूजित कल्याणी वाणी ।
इस ध्वनि पर प्रतिध्वनि करती रह-रह पर्वतमाला,
यह गुफा गीत गाती है ओढ़े नव हरा दुशाला ।
क्या तूने ही नारद को सिखलाया ता-ना-ना-ना ?
क्या तुझसे ही मोहन ने सीखा था वेणु बजाना ?
पंछी-दल ने तेरे ही गीतों का गान किया है ?
हरि ने तेरी वाणी को अमरत्व प्रदान किया है ?
क्या जाने तरु-पखेरू तुझको लख क्यों जीते है,
तेरा 'कल-कल' पीते है या तेरा जल पीते है ?

अपने पंखों से किसने नभ-छेदन इन्हें सिखाया ?
आकाश-लोक का किसने इनको गांधर्व बनाया ?
श्यामल घन श्वासों-जैसी बाँसुरी न दिखलाती है,
पर तेरे गीतो की धुन स्वच्छंद सुनी जाती है ।
ये छोटे-छोटे तरुवर रह-रह ताल देते है,
तुझसे प्रसाद में ठडे प्यारे मोती लेते है ।
कितने प्यारे तरु फूले, कलियों पर मुकुट लगाये,
पर तेरी गोदी में है वे अपने शीश झुकाये ।

कठिन-शब्दार्थ

कूजित - ध्वनित
अवनीतल - पृथ्वी
हृत्तल - हृदय, अन्तस्तल
पखेरू - पछी
गाधर्व - गानेवाला, गंधर्व जाति का

3. श्री जयशंकर 'प्रसाद'

आधुनिक हिन्दी कविता के प्रख्यात 'त्रिदेवों' में अ
सुमित्रानन्दन पंत को विष्णु और महाप्राण 'निराला' को
कहा जाय, तो निस्संदेह आप विधाता कहे जाएँगे। हि
साहित्य को आपकी देन अद्भुत है। आप एक साथ क
नाटककार और कथाकार के रूप में प्रख्यात हैं। साहित्य
जिस किसी अंग को आपकी प्रतिभा ने स्पर्श किया, व
स्वर्णिम होकर चमक उठा।

नाटककार और कथाकार होने के बावजूद आप मुख्य
कवि हैं। आपने जान-बूझकर किसी 'वाद' के लिए रचन
नहीं कीं, फिर भी आपकी रचनाएँ एक विशिष्ट 'वाद'
उदाहरण बन गयीं और आज आम तौर पर आप ही छायावा
युग के प्रवर्तक माने जाते हैं। 'कामायनी' जैसा श्रेष्ठ म
काव्य देकर आपने जहाँ विश्वमानव की चिरंतन समस
सुलझायी है, वहीं 'आँसू' के छन्दों में आपने अपना अन्तर
खोलकर हमारे सामने रख दिया है।

'कामायनी' और 'आँसू' के अतिरिक्त आपके प्रसि
ग्रंथ हैं—लहर, झरना, प्रेमपथिक (काव्य), आँधी, छा
इन्द्रजाल, प्रतिध्वनि, आकाशदीप (कहानी), चन्द्रगु
अजातशत्रु, स्कन्दगुप्त आदि (नाटक), कंकाल, तित
(उपन्यास)।

आप प्रसिद्ध काशी नगरी के निवासी थे। आप
जन्म सन् 1889 ई० में और निधन सन् 1937 में हुआ।

भारतवर्ष

हिमालय के आंगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार,
उषा ने हँस अभिनंदन किया और पहनाया हीरक-हार ।

जगे हम, लगे जगाने विश्व, लोक में फैला फिर आलोक,
व्योम-तम-पुंज हुआ तब नष्ट, अखिल संसृति हो उठी अशोक।

विमल वाणी ने वीणा ली कमल-कोमल कर में सप्रीत,
सप्त स्वर सप्त सिंधु में उठे, छिडा तब मधुर साम-संगीत ।

बचाकर बीज रूप से सृष्टि, नाव पर झेल प्रलय का शीत,
अरुण केतन लेकर निज हाथ वरुण-पथ में हम बढ़े अभीत।

सुना है दधीचि का वह त्याग हमारी जातीयता विकास,
पुरंदर ने पवि से है लिखा अस्थियुग का मेरा इतिहास ।

धर्म का ले-लेकर जो नाम हुआ करती बलि, कर दी बंद,
हमीने दिया शांति-संदेश, सुखी होते देकर आनंद।

विजय केवल लोहे की नहीं, धर्म की रही धरा पर धूम,
भिक्षु होकर रहते सम्राट, दया दिखलाते घर-घर घूम।

यवन को दिया दया का दान, चीन को मिली धर्म की दृ
मिला था स्वर्णभूमि को रत्न, शील की सिंहल को सृष्टि

किसीका हमने छीना नहीं, प्रकृति का रहा पालना यहीं,
हमारी जन्म-भूमि थी यहीं, कहीं से हम आये थे नहीं।

जातियों का उत्थान-पतन, आँधियाँ, झड़ी, प्रचण्ड समी
खड़े देखा, झेला हँसते, प्रलय में पले हुए हम वी

चरित के पूत, भुजा में शक्ति, नम्रता रही सदा संपन्न,
हृदय के गौरव में था गर्व, किसीको देख न सके विपन्न।

हमारे संचय में था दान, अतिथि थे सदा हमारे दे
वचन में सत्य, हृदय में तेज, प्रतिज्ञा में रहती थी टेव

वही है रक्त, वही है देश, वही साहस है, वैसा ज्ञान,
वही शांति, वही है शक्ति, वही हम दिव्य आर्य-संतान।

जियें तो सदा उसीके लिए, यही अभिमान रहे, यह ह
निछावर कर दें सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष !

कठिन-शब्दार्थ

हीरक-हार - हीरे का हार
व्योम-तम-पुंज - आकाश का घना अंधकार
संसृति - ससार
अशोक - शोकरहित
कमल-कोमल - कमल के समान कोमल
सप्रीत - प्रेमपूर्वक
साम सगीत - सामवेद का गान
अरुण केतन - लाल ध्वज
वरुण-पथ - जलमार्ग
अभीत - निर्भय
पुरंदर - इद्र
पवि - वज्र
अस्थियुग - एक ऐतिहासिक युग जिसमें लोग हड्डी के हथियारो का ही उपयोग करते थे, क्योकि धातु का आविष्कार तब तक नही हुआ था।
लोहे की विजय - शस्त्रबल द्वारा विजय
पालना - झूला
झड़ी - अविराम वर्षा
पूत - शुद्ध
विपन्न - सकटग्रस्त
टेव - आदत

4. ठाकुर गोपालशरण सिंह

आप रीवाँ (विंध्यप्रदेश) के नईगढ़ी नामक इलाक़े जागीरदार हैं। आपका जन्म सन् 1891 ई० में हुआ था।

आप एक लब्धप्रतिष्ठ कवि हैं। सन् 1912 से ही आप कविताएँ प्रकाशित होती रही हैं। मानव की को भावनाओं का सहज और सरस वर्णन करने में आप सिद्धह हैं। ग्राम्य जीवन का स्वाभाविक चित्रण आपकी 'ग्रामिक में हुआ है और नारी-जीवन की अश्रुविगलित मर्मकथा आपने 'मानवी' के पद्यों में उजागर किया है।

छंद की दृष्टि से आपकी घनाक्षरी का रूप बहुत परिष्कृत माना जाता है। भाषा को निखारने में भी आप अच्छा हाथ रहा है।

आपकी सुन्दर कविताओं के कई संग्रह प्रकाशित हैं, जिनमें 'मानवी', 'ज्योतिष्मती', 'ग्रामिका' आ उल्लेखनीय हैं।

माँ

है जग-जीवन की जननी तू
तेरा जीवन ही है त्याग;
है अमूल्य वैभव वसुधा का
तेरा मूर्तिमान अनुराग।

धूल-धूसरित रत्न जगत का
है तेरी गोदी का लाल;
है जग-बाल जलज का रक्षक
माँ, तेरा मृदु बाहु-मृणाल।

कितनी घोर तपस्या करके
पाती है तू यह वरदान!
किन्तु विश्व को अनायास ही
कर देती है उसे प्रदान।

है तुझसे ही लालित-पालित
यह भोला-भाला संसार;
करती है प्लावित वसुधा को
तेरी प्रेम-सुधा की धार।

तेरे दिव्य हृदय में जिसका
रहता है सदैव संचार;
लिये अंक में मृदुल सुमन को
लता दिखाती है वह प्यार।

बाल विहग के लिए विहंगी
तृण से भरकर नीड़ सहर्ष,
दिखलाती है जगतीतल में
तेरा प्रेम-विभव-उत्कर्ष।

तेरी करुण साधना का माँ,
है मातृत्व स्वयं उपहार!
क्षुधित देख असहाय विश्व को
बहती है उर से पयधार।

कठिन-शब्दार्थ

धूल-धूसरित - धूल में लिपटा हुआ
जग-बाल - जगत्-रूपी बालक
जलज - कमल
मृणाल - कमल-नाल
प्लावित - डूबा हुआ

बाल विहग - शिशु पक्षी
विहंगी - मादा पक्षी
नीड - घोसला
क्षुधित - भूखा
पयधार - दूध की धारा

5. श्री गुरुभक्त सिंह 'भक्त'

आपका जन्म सन् 1893 ई० में हुआ था। आप जमनिय ज़िला गाज़ीपुर के निवासी हैं। शिक्षा के लिहाज़ से आ बी. ए., एल. एल. वी., हैं।

आप प्रकृति के कवि हैं। प्रकृति]का नख-शिख-चित्र करने में आपकी प्रतिभा ने विलक्षण चमत्कार दिखाया है पेड़-पौधे से लेकर पशु-पक्षी तक आपकी कविताओं में सजी हो उठते हैं। भाषा की सरलता, भावों की प्रांजलता औ निरीक्षण की सूक्ष्मता आपकी विशेषता है।

आपका 'नूरजहाँ' महाकाव्य हिन्दी का भूषण है। आपक ख्याति इसके कारण ही बहुत हुई। नूरजहाँ का भी प्रकृति चित्रण विलक्षण है। मानव के प्रेमाकुल हृदय की प्यास दाहकता और अन्तर्द्वन्द्वों का जो सफल चित्रण इसमें है, व अन्यत्र दुर्लभ है। मुहावरों के प्रयोग भी दर्शनीय हैं।

आपकी अन्य पुस्तकों में 'विक्रमादित्य' प्रबंधकाव्य औ 'कुसुमकुंज', 'वंशीध्वनि', 'वनश्री' आदि काव्य-संग्र उल्लेखनीय हैं।

ओस

मोती मुझको बतलाते हो, वह कठोर है, नही सजल;
द्रवित हृदय-सी मै सजला हूँ, नव पल्लव से भी कोमल;
आती हूँ अकास से प्रति निशि छिपता रवि जब अस्ताचल,
गाकर नीरव गीत नाचती—नही अप्सरा हूँ चंचल।

भू पर परन्तु लौट जाती हूँ, पवन छेड़ ज्यों ही करता,
मचल गयी तो मचल गयी मैं, उठती है फिर कौन भला;
मुझे आबरू है बस प्यारी, पानी है मुझको रखना,
गले-गले अरु गली-गली बन हार नही मुझको फिरना।

शस्य-श्यामला पर मैं लेटी, सो भी सुन्दर फूलों में;
कोमल नव पल्लव पर चमकी, सरस नदी के कूलों में;
रंग बिगाड़ देती तितली का मिली जो मुझसे भूलों में;
पुष्पों के संग रही झूलती चन्द्रकिरण के झूलों में!

गत दिवस

चला गया है आज हमारा
एक दिवस यह और,
समय विगत होता रहता है
इसी तरह सब ठौर।

अभी-अभी तो दिन निकला था
होता है यह ज्ञात,
देर न कुछ भी लगी और यह
अभी आ गयी रात।

दिन ही क्यों, वर्षों पहले का
सुखमय शैशव काल,
मन में आता है मानों वह
अभी गया है हाल।

सुख की खिली चाँदनी हो या
होती हो दुख-वृष्टि,
किन्तु ठहरकर समय न इनपर
कभी डालता दृष्टि।

यह रजनी भी चली जाएगी,
होगा इसका अन्त,
दिन आएगा, चला जाएगा,
फिर वह भी हा हन्त!

चल यों निशि-दिनरूप पगों से
निशि-दिन बिना प्रयास,
चले जा रहे हम सवेग है
महामृत्यु के पास।

करना हो जो करें शीघ्र हम
तज आलस्य अभंग;
क्या जानें कब छूट जाय इस
समय-सखा का संग!

कठिन-शब्दार्थ

दुख-वृष्टि - दुख की वर्षा
सवेग - वेगसहित
अभंग - अखण्डित
समय-सखा - समयरूपी साथी

7. श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

आपका जन्म सन् 1897 ई० में शाजापुर (ग्वालियर) में हुआ था। कवि होने के साथ ही आप राजनैतिक नेता सफल वक्ता एवं पत्रकार भी हैं।

आप जीवन की मस्ती के गायक हैं। आपकी अपनी शैली है, ओज है और प्रवाह है। नवीन युग की भावधाराओं का आपपर विशेष रूप से प्रभाव पड़ा है। नवीन युग की विषमताओं, आघातों और विफलताओं के क्रन्दन के विरुद्ध आपने संघर्ष और विद्रोह के स्वर को ही प्रधानता दी है। विप्लव की भावनाओं का वेगपूर्ण विस्फोट आपकी कविताओं में ही पहले-पहल हुआ। इतना होने पर भी आप केवल विप्लव-वादी कवि नहीं हैं, हृदय में कोई गहरा दर्द भी है जो रह-रहकर आपकी कविताओं में चीख उठता है।

आपकी कविताओं के कई संकलन प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें 'क्वासि', 'रश्मिरेखा' आदि उल्लेखनीय हैं।

कागजी नाव

हम भी अजब जंतु है जग में, चढ कागज की नाव,
प्रेम-समुन्दर चले नांघने, लगा प्राण के दॉव!
पेशेवर मल्लाह हँस पडे यह बौडमपन देख,
पर हमने दे टीप अलापी अपने मन की टेक।

दुनियादारो, तुम क्या समझो हम मस्तो का खेल?
शास्त्र हमारा अलग जगत से, अलग हमारी गैल;
सरकंडे की डाँड हमारी औ' काग़ज़ की नाव,
लहर, भँवर का इस सागर में हमें नहीं अटकाव।

इन उपकरणों को ही लेकर सदियों पहले यार,
जिन पगलों ने किया संतरित यह रस पारावार,
हम भी उनके ही वंशज हैं, फिर हमको क्या सोच?
कैसी झिझक, जुगुप्सा कैसी? क्य भय, क्या संकोच?

तरल-तरंगित, पवन-विकंपित प्रेमांबुधि के बी
वे समानधर्मा अलबेले लीक गये हैं खीच
अरे, आज भी दीख रहे हैं उनके वे नौ-या
क्षीरोदधि में राजहंस की पांतों-से अम्लान

हमने भी डाली सागर में नौका जर्जर क्षीण,
गल गये तो भी क्या चिंता? होगे सागर-लीन;
तिरती है तब तक तो उनमें बैठे हम रसखान
हो निःशंक रहेंगे गाते पुण्य-प्रेम के गान!

कठिन-शब्दार्थ

दाँव - बाजी
पेशेवर - व्यवसायी
बौड़मपन - पागलपन
टीप - दबाव
अलापना - ऊँचे स्वर में गाना
टेक - गीत का स्थायी पद
गैल - गली, रास्ता
सरकंडा - तृण की जाति का पौधा
डाँड़ - पतवार
अटकाव - रुकावट
उपकरण - साधन-सामग्री
संतरित करना - पार करना

पारावार - सागर
जुगुप्सा - घृणा
प्रेमाम्बुधि - प्रेम-रूपी सागर
समानधर्मा - समान गुणवाला
अलबेले - निराले
लीक - लकीर
नौ-यान - पोत
पाँत - पंक्ति
अम्लान - उज्ज्वल
रसखान - आनन्दस्वरूप या आनंद-निधान आत्मा
निःशंक - शंकारहित

8. श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी ' निराला '

आपकी पितृभूमि उत्तर प्रदेश है, लेकिन जन्म बंगाल के महिषादल स्टेट में सन् 1898 ई० में हुआ था। आप बंगला और संस्कृत के अच्छे ज्ञाता हैं। आजकल प्रयाग में रहते हैं।

हिन्दी के युगान्तरकारी कवियों में 'प्रसाद' और 'पंत' के साथ आपका नाम लिया जाता है। अपनी शैली के आप विशिष्ट कवि हैं और पंत की भाँति ही आप भी छायावादी एवं प्रगतिवादी युगों के प्रकाशस्तंभों में से हैं। आपकी कल्पना की उड़ान असाधारण ऊँचाई तक जाती है। आपकी रचनाओं में जहाँ एक ओर यथार्थ की छाप रहती है वहीं दूसरी ओर दार्शनिकता के कारण आध्यात्मिक भावसौंदर्य का भी अनुपम निखार रहता है। छंदों मे स्वच्छन्दता, स्वतंत्र कल्पना और व्यंगमयी शैली आपके ' निराला ' नाम को सार्थक करती हैं।

' परिमल ', ' गीतिका ', ' अनामिका ', ' तुलसीदास ', ' बेला ', ' नये पत्ते ' आदि आपकी कविताओं के संग्रह हैं। गद्य-लेखन में भी आपका अपना स्थान है। ' अलका ', ' अप्सरा ' आदि उपन्यास तथा कहानियों और निबंधों के कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

ध्वनि

अभी न होगा मेरा अंत।
अभी-अभी ही तो आया है
मेरे वन में मृदुल वसंत—
अभी न होगा मेरा अन्त।

हरे-हरे ये पात,
डालियाँ, कलियाँ कोमल गात!
मैं ही अपना स्वप्न मृदुल कर
फेरूँगा निद्रित कलियो पर,
जगा एक प्रत्यूष मनोहर।

पुष्प-पुष्प से तन्द्रालस लालसा खींच लूँगा मै,
अपने नव जीवन का अमृत सहर्ष सींच दूँगा मै;
द्वार दिखा दूँगा फिर उनको
है मेरे वे जहाँ अनन्त—
अभी न होगा मेरा अन्त।

मेरे जीवन का यह है जब प्रथम चरण,
इसमें कहाँ मृत्यु ?—है जीवन ही जीवन ।
अभी पडा है आगे सारा यौवन ;
स्वर्णकिरण-कल्लोलों पर बहता रे यह बालक-मन ;
मेरे ही अविकसित राग से
विकसित होगा बन्धु दिगन्त—
अभी न होगा मेरा अन्त !

कठिन-शब्दार्थ

प्रत्यूष - प्रातःकाल
तन्द्रालस - निद्रा के आलस्य से युक्त
'स्वर्णकिरण-कल्लोलो पर.. यह बालक-मन' - सुंदर भावनारूपी लहरों पर बालकरूपी मेरा मन तैरता है।
दिगन्त - दिशा का अंत या छोर

9. सुमित्रानंदन पंत

आपका जन्म सन् 1899 ई० में अल्मोड़ा (उत्तर प्रदेश) सुरम्य पर्वतीय अंचल में हुआ था। प्रकृति की ही गोद शैशव बीता और उसीसे आपको कविता की प्रेरणा मिली।

आपको किसी एक विशिष्ट 'वाद' का कवि कहना मुश्कि है। आपकी काव्यरचना का विकास ही कुछ इस तरह हु है कि आपको किसी एक 'वाद' की सीमा में बाँधा नहीं सकता। आपने छायावाद और प्रगतिवाद से संबंधित दो प्रकार की रचनाएँ की हैं।

भावों की सुकुमारता और भाषा की कोमलता में आ अद्वितीय हैं।

आपकी कविताओं के निम्न-लिखित संग्रह प्रकाशित चुके हैं—'वीणा', 'ग्रंथि', 'पल्लव', 'गुंजन', 'युगांत 'युगवाणी', 'ग्राम्या', 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि', 'उत्तर 'रजतशिखर' और 'शिल्पी'।

आपके निबन्धों का संग्रह 'गद्यपथ' नाम से प्रकाशि हुआ है।

वह बुड्ढा

खडा द्वार पर लाठी टेके
वह जीवन बूढा पंजर,
चिमटी उसकी सिकुडी चमडी
हिलते हड्डी के ढाँचे पर।

उभरी ढीली नसें जाल-सी
सूखी ठठरी से है लिपटी।
पतझर में ठूँठ तरु से ज्यों
सूनी अमरबेल हो चिपटी।

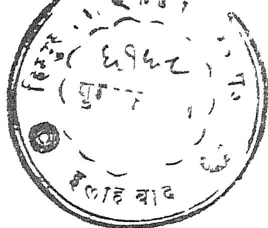
उसका लंबा डील-डौल है
हट्टी-कट्टी काठी चौड़ी;
इस खंडहर में बिजली-सी
उन्मत्त जवानी होगी दौड़ी।

बैठी छाती की हड्डी अब,
झुकी रीढ़ कमठा-सी टेढी,
पिचका पेट, गढ़े कंधों पर,
फटी बिवाई से है एड़ी।

बैठ, टेक धरती पर माथा
वह सलाम करता है झुककर,
उस धरती से पाँव उठा लेने को
जी करता है क्षण-भर।

घुटनों से मुड़ उसकी लंबी
टाँगें, जाँघें सटी परस्पर :
झुका बीच में शीश, झुर्रियों का
झाँझर मुख निकला बाहर।

हाथ जोड़, चौड़े पंजों की
गुँथी अँगुलियों को कर सन्मुख,
मौनत्रस्त चितवन से
कातर वाणी से वह कहता निज दुख।



वह बुड्ढा

गर्मी के दिन, धरे उपरनी सिर
लुंगी से ढाँपे तन,
नंगी देह भरी बालों से—
वनमानुस-सा लगता वह जन।

भूखा है, पैसे पा, कुछ गुन-गुन,
खड़ा हो, जाता वह घर;
पिछले पैरों के बल उठ
जैसे कोई चल रहा जानवर!

काली नारकीय छाया निज
छोड गया वह मेरे भीतर,
पैशाचिक-सा कुछ दुःखों से
मनुज गया शायद उसमें मर!

कठिन-शब्दार्थ

पंजर - पिंजडा
चिमटी - चिपकी हुई
ठठरी - हड्डियो का ढॉचा
ठूँठे तरु - पत्र पुष्पविहीन वृक्ष
अमरबेल - एक लता जिसकी जड़ ज़मीन पर नहीं होती, हवा से ही जीवन-रस ग्रहण करती हुई वृक्षों पर फैल जाती है
डील-डौल - शरीर का विस्तार
काठी - देह की गठन, शरीर की बनावट

कमठा - कमान, धनुष
बिवाई - पॉव के चमड़े फट जाने का रोग
माथा - मस्तक
टॉगे - पॉव
झाँझर - जर्जर
उपरनी - छोटा दुपट्टा
लुंगी - छोटी धोती, तहमत
गुन-गुन - सोचता हुआ-सा

10. श्री मोहनलाल महतो 'वियोगी'

आपका जन्म सन् 1902 ई० में हुआ था। आप ऊपर-डीहा, ज़िला गया (बिहार) के निवासी हैं।

आप यथार्थ का चित्रण करनेवाले कलाकार हैं। कल्पना के साथ व्यर्थ खिलवाड़ न कर आपने यथार्थ जीवन की व्याख्या काव्यकला के माध्यम से की। युग की पुकार का आपने भरसक साथ तो दिया है, लेकिन अपनी 'वीणा' और 'एकतारा' भी सूने में बैठकर बजाते रहे हैं। इनके अतिरिक्त आपकी कविताओं का तीसरा संग्रह 'निर्माल्य' है। जीवन के नये उत्थान के बीच निराशा और अवसाद के गीत आपने गाये हैं।

आप प्रतिभावान गद्य-लेखक भी हैं। जीवन-संघर्षों का सफल चित्रण आपकी कहानियों में हुआ है। आपके 'संस्मरण' तो लाजवाब होते हैं। आपकी सर्वतोमुखी प्रतिभा का ही यह चमत्कार है कि विविध विषय की आपकी पुस्तकों की संख्या 70 के क़रीब जा पहुँची है।

आकांक्षा

जीवन के तम में ध्रुव बनकर
अमर ज्योति तू फैलाना,
भाव-कुंज में सुमनस हो
कोमलता-सुमन खिला जाना।

भर देना इस क्षुद्र बाँस की
वंशी को अपने स्वर से,
और क्रूरता का कठोर
पत्थर-सा हृदय हिला जाना।

सावन के घन-सा छा जाना
ग्रीष्मताप मिटाने को
चातक पर कर दया नीर की
बस, दो बूँद पिला जाना।

युग-युग से मस्तक पर हिम
धारण कर नगपति क्षुब्ध हुए,
मेरी आहों की गर्मी से
उसको अब पिघला जाना।

अधिक दूरता अखर रही है,
है यह अंतिम चाह विभो!
बन दिग-चक्रवाल वसुधा से,
नभ से आज मिला जाना।

कठिन-शब्दार्थ

सुमनस - फूल, सुन्दर मनवाला
क्षुद्र - निम्न, नीच
नगपति - पर्वतराज हिमालय
क्षुब्ध - दुखी
दूरता - दूरी
अखरना - कष्टप्रद लगना
विभो - 'विभु' (ईश्वर) का संबोधन
दिग-चक्रवाल - क्षितिज, दिशाओं का मंडल जहाँ पृथ्वी और आकाश का संगम होता है।

11. श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान

खड़ी बोली की राष्ट्रीय धारा की आप मुख्य कवयि मानी जाती हैं। देशप्रेम के उन्माद में जहाँ आपने राजनै आन्दोलन में खुलकर भाग लिया, वहीं हिन्दी कविता को समृद्ध किया। राष्ट्रीयता के कारण ओजपूर्ण कविताएँ लिख आपके लिए स्वाभाविक ही था, लेकिन हृदय की मधुर कोमल भावनाओं का भी आपने अच्छा चित्रण किया है। आनन्द और उल्लास का चरम उत्कर्ष आपकी रचनाओं हुआ है।

आपकी कविताओं का संग्रह 'मुकुल' नाम से प्रका हुआ है। 'त्रिधारा' मे भी आपकी कुछ कविताएँ संगृहीत

कहानी के क्षेत्र मे भी आपने अच्छी ख्याति पाय 'बिखरे मोती' आपकी सुन्दर कहानियों का संग्रह है।

आपका जन्म सन् 1904 ई० में प्रयाग में हुआ था विवाह के बाद आप पति के साथ जबलपुर में रहने लगी थ सन् 1948 ई० में दुर्भाग्यवश आप मोटर-दुर्घटना की चपेट आ गयीं और चल बसीं।

लक्ष्मीबाई की समाधि पर

इस समाधि में छिपी हुई है एक राख की ढेरी।
जलकर जिसने स्वतंत्रता की दिव्य आरती फेरी।
यह समाधि, यह लघु समाधि है झाँसी की रानी की।
अंतिम लीलास्थली यही है लक्ष्मी मरदानी की॥

यहीं कहीं मर बिखर गयी वह भग्न विजयमाला-सी।
उसके फूल संचित है, है यह स्मृतिशाला-सी।
सहे वार पर वार, अन्त तक लड़ी वीर बाला-सी,
आहुति-सी गिर चढ़ी चिता पर, चमक उठी ज्वाला-सी॥

बढ़ जाता है मान वीर का रण में बलि होने से,
मूल्यवती होती सोने की भस्म यथा सोने से।
रानी से भी अधिक हमें अब यह समाधि है प्यारी;
यहाँ निहित है स्वतंत्रता की, आशा की चिनगारी॥

पद्य-प्रवेशिका

इससे भी सुन्दर समाधियाँ हम जग में है पाते,
उनकी गाथा पर निशीथ में क्षुद्र जन्तु ही गाते।
पर कवियों की अमर गिरा में इसकी अमिट कहानी
स्नेह और श्रद्धा से गाती है वीरों की वाणी॥

खूब लड़ी मरदानी वह थी झाँसीवाली रानी
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी
यह समाधि, यह चिर समाधि है झाँसी की रानी की
अंतिम लीलास्थली यही है लक्ष्मी मरदानी की

कठिन-शब्दार्थ

लघु - छोटी

स्मृतिशाला - स्मृतियो का घर, जिसे देखकर अनेक स्मृतियाँ ताजी हो जाएँ

बुन्देले हरबोले - वीर क्षत्रिय जाति की शाखाएँ

12. श्री सोहनलाल द्विवेदी

आपका जन्म सन् 1905 ई० में विन्दकी, ज़िला फ़तेहपुर (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। काशी विश्वविद्यालय से एम. ए., और एल. एल. वी. की डिग्रियाँ हासिल कीं।

आप एक ऐसे देशभक्त कवि हैं जिनपर गांधीवादी विचारों का प्रभाव अधिक है। गांधीजी के व्यक्तित्व एवं उनके सिद्धान्तों से प्रभावित होकर आपने असंख्य कविताएँ लिखीं। सरल भाषा और सुन्दर शैली के कारण ये कविताएँ वहुत लोकप्रिय हुई हैं। आपकी कुछ ऐसी भी रचनाएँ हैं जिनमें आपने संस्कृति के विषयों को स्पर्श किया है। वर्णन के अनुरूप मुक्त छंदों को चमत्कारिक बनाने में भी आप सफल रहे हैं।

सरल और प्रवाहपूर्ण शैली में वाल-साहित्य का निर्माण करने में आप सबसे आगे हैं।

आपकी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं—'किसान', 'पूजागीत', 'कुणाल', 'भैरव', 'चित्रा', 'विंदकी' आदि।

खादी-गीत

खादी के धागे - धागे में
अपनेपन का अभिमान भरा,
भारत का इसमें मान भरा,
अन्यायी का अपमान भरा।
खादी के रेशे - रेशे में
अपने भाई का प्यार भरा;
माँ-बहनों का सत्कार भरा,
बच्चों का मधुर दुलार भरा।

खादी की रजत चन्द्रिका जब आकर तन पर मुस्काती है
तब नवजीवन की नयी ज्योति अन्तस्तल में जग जाती है
खादी की गंगा जब सिर से पैरों तक बह लहराती है
जीवन के कोने-कोने की तब कालिख धुल जाती है

खादी तो कोई लड़ने का
है भडकीला रणगान नही,

खादी-गीत

खादी है तीर-कमान नहीं,
खादी है खड्ग-कृपाण नहीं।
खादी को देख-देख तो भी
दुश्मन का दल थहराता है;
खादी का झंडा सत्य-शुभ्र
अब सभी ओर फहराता है।

कठिन-शब्दार्थ

रेशा - महीन सूत
दुलार - प्यार
रजत - चाँदी
अन्तस्तल - हृदय
कालिख - मलिनता
ताज - मुकुट
भडकीला - शानदार, आडंबरपूर्ण
कृपाण - कटार
थहराना - काँपना

13. श्रीमती महादेवी वर्मा

आपका जन्म सन् 1907 ई० में फ़र्रुखाबाद (उत्तर प्रदेश में हुआ था। आपने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम. ए. पा किया और अब वहीं महिला-विद्यापीठ की प्रधानाचार्या हैं।

आपकी प्रतिभा ने खड़ी बोली के गीतिकाव्य को ज संजीवनी शक्ति दी है, वह अनुपम और साहित्य के लिए गौर की वस्तु है। अतृप्ति और विरह, व्यथा और सिहरन तथ प्राणों के क्रन्दन की जैसी अभिव्यक्ति आपके गीतों में हुई है वह अन्यत्र दुर्लभ है। वेदना की मधुर गायिका होने के कार आपको आधुनिक युग की मीरा कहें, तो इसमें कोई अत्युि नहीं। 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सांध्य गीत' औ 'दीपशिखा' में आपके गीतों का संकलन हुआ है।

कविता के अतिरिक्त आपके गद्य-लेखन की अपनी विलक्ष शैली है। आपके शब्द-चित्र बड़े ही मार्मिक, मोहक औ सतुलित होते हैं। आपका गद्य भी मानों कविता है, उ काव्य-गुणों से भरपूर है। 'स्मृति की रेखाएँ', 'श्रृंखल की कड़ियाँ', 'अतीत के चलचित्र' आपके बोलते शब्दचित्र हैं

आप तूलिका की भी धनी हैं। इसी कारण आपकी कवित में चित्रात्मकता और आपके चित्रों में काव्यात्मकता की झल रहती है।

अधिकार

वे मुस्काते फूल, नही—
जिनको आता है मुरझाना,
वे तारो के दीप, नही—
जिनको भाता है बुझ जाना ,

वे नीलम के मेघ, नही—
जिनको है घुल जाने की चाह,
वह अनन्त ऋतुराज, नही—
जिसने देखी जाने की राह ,

वे सूने-से नयन, नही—
जिनमें बनते आँसू-मोती,
वह प्राणो की सेज, नही—
जिसमें बेसुध पीड़ा सोती ;

ऐसा तेरा लोक, वेदना—
नही, नही, जिसमें अवसाद,
जलना जाना नही, नहीं—
जिसने जाना मिटने का स्वाद ।

*　　*　　*

क्या अमरो का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार?
रहने दो हे देव! अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार!

कठिन-शब्दार्थ

नीलम - इन्द्रनील मणि　　अवसाद - उदासी, नाश, विषाद
ऋतुराज - वसंत

14. श्री हरिवंश राय 'बच्चन'

आपका जन्म सन् 1907 ई० में हुआ था। आप इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अंग्रेज़ी के प्रोफ़ेसर थे। अभी हाल ही में आप इंग्लैड से साहित्य के डाक्टर की उपाधि लेकर आये हैं। इस समय आप विदेशी मंत्रालय, भारत सरकार, में काम कर रहे हैं।

आपकी प्रतिभा विलक्षण है। अपनी प्रतिभा के बल पर आपने हिन्दी काव्य-साहित्य में अपने लिए एक विशिष्ट पथ का निर्माण किया है। प्रारंभ में आपने अपनी कविता में मानव-जीवन की तृष्णा को साकार करने का प्रयत्न किया, किंतु आगे चलकर अपने जीवन को विविध पहलुओं से देखने की चेष्टा की। आप निर्भीकता के साथ अपने निश्चल हृदय के सरल उद्गारों को गीतों के माध्यम से व्यक्त करते रहे हैं। जीवन में निराशा, सुस्ती, उल्लास और उन्माद आदि के क्षण आते ही रहते हैं, आपने सहज भाव से उन सबको अपनी कविता का विषय बनाया है। आपकी कविता की भाषा सरल होती है, भाव सुस्पष्ट होते हैं और कल्पना में कहीं उलझाव-अटकाव नहीं होता।

आपकी उल्लेखनीय पुस्तकें हैं—'तेरा हार', 'मधुबाला', 'मधुशाला', 'आकुल अंतर', 'एकांत संगीत', 'निशा-निमंत्रण', 'सतरंगिनी', 'मिलन-यामिनी', 'सोपान' आदि।

जो बीत गयी

जो बीत गयी सो बात गयी !

जीवन में एक सितारा था,
माना, वह बेहद प्यारा था,
वह डूब गया तो डूब गया;
अम्बर के आनन को देखो !
कितने इसके तारे टूटे,
कितने इसके प्यारे छूटे,
जो छूट गये फिर कहाँ मिले ?
पर बोलो, टूटे तारों पर
कब अम्बर शोक मनाता है ?
जो बीत गयी सो बात गयी !

*   *   *

जीवन में वह था एक कुसुम,
थे उसपर नित्य निछावर तुम,

वह सूख गया तो सूख गया;
मधुवन की छाती को देखो,
सूखी कितनी इसकी कलियाँ,
मुरझायी कितनी वल्लरियाँ,
जो मुरझायी फिर कहाँ खिली?
पर बोलो सूखे फूलो पर
कब मधुवन शोर मचाता है?
जो बीत गयी सो बात गयी!

*   *   *

मृदु मिट्टी के है बने हुए,
मधु फूटा ही करते है,
लघु जीवन लेकर आये है,
प्याले टूटा ही करते है;
फिर भी मदिरालय के अंदर
मधु के घट है, मधुप्याले है;
जो मादकता के मारे है,
वे मधु लूटा ही करते है।
वह कच्चा पीनेवाला है
जिसकी ममता घट-प्यालो पर;

जो सच्चे मधु से जला हुआ
कब रोता है, चिल्लाता है?
जो बीत गयी सो बात गयी!

कठिन-शब्दार्थ

अम्बर - आकाश
आनन - चेहरा
मधुघट - शराब का घड़ा
वल्लरी - लता
मधुप्याले - मधुभरे प्याले
मादकता - नशा, नशीलापन
ममता - स्नेह, आसक्ति

15. श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'

आपका जन्म सन् 1908 ई० में सिमरिया, ज़िला मुंगेर (बिहार) में हुआ था। आप सचमुच हिन्दी काव्य-जगत के दिनकर हैं। वही तेज और प्रखरता आपकी प्रतिभा में है।

आप प्रारंभ में भारत के अतीत के खंडहरों पर रोये, विगत वैभव का गान किया और अब भावी स्वर्णविहान के स्वप्नद्रष्टा हैं। राष्ट्र की आत्मा के साथ आपकी अन्तर्वेदना इस तरह एकाकार हो गयी है कि आपकी कविताओं में कवि दिनकर को खोजना प्रायः मुश्किल हो जाता है, राष्ट्र का स्वर ही प्रमुख बन जाता है। आपके भावों में अत्यधिक ओज रहता है। भाषा जैसे आपकी बाँदी बन भावधारा का सतत अनुगमन करती रहती है। आजकल आपकी नयी कविताओं पर भावना से अधिक चिन्तन का दबाव परिलक्षित होता है।

आपके ग्रंथों में दो काव्य 'कुरुक्षेत्र' और 'रश्मिरथी' प्रसिद्ध हैं। दोनों में युद्ध और मानव की समस्या प्रधान है। फुटकर कविता-संग्रहों में 'रेणुका', 'हुँकार', 'रसवंती', 'सामधेनी', 'इतिहास के आँसू', 'बापू' आदि उल्लेखनीय हैं।

गद्य-लेखन की आपकी शैली भी अपने ढंग की है। 'मिट्टी की ओर' और 'अर्द्धनारीश्वर' में आपके मौलिक निबंध संगृहीत हैं।

भीख

दाता से मै माँगता तुम्हारे लिए भीख,
जीवन का पहला सत्य दहन तुम सको सीख।

दिन-रात जलाती रहे लहू की तुम्हें
मन के सोये तूफ़ान तुम्हारे उठें

लहरों से उलझे लडो, बढ़ो, तुम फल-फूल,
मुझ-सा ही तुमको मिले महोदधि का न कूल।

घाटी के निर्झर बढ़ो, बनो नद महा
मत लो विराम, मत रचो कही अपनी कह

देखो, अंबर छा रहा शिखर उन्नत, अभंग,
उससे भी ऊपर उड़े तुम्हें लेकर उमंग।

भीतर की दारुण शिखा जलाती रहे
फूँके चिनगारी असंतोष की वर्तम

दृग से शोणित के झरें अश्रु सायं-प्रभात,
जीवन में हो हर रोज़ तुम्हारे अशनिपात।

देवता दिखा दर्पण अदृष्ट का तुम्हें क्रान्त!
कर दें जीवन को और अधिक दुस्सह, अशांत।
पारद-सी कोई चीज़ जीस्त की बड़ी देन,
तड़पे दिल में, लेने न कभी दे तुम्हें चैन।
दाता से मैं माँगता भीख अंजलि पसार,
जीवन में जो कुछ भीष्म, उसे कर सको प्यार!
अंगारों-से तुम रहो ज्वलित, जाग्रतविमर्श!
देखे जग, पर भयवश न कभी कर सके स्पर्श।
जीवन के आविल दुरित जला दे वह्निकील!
बेचैन हृदय से कढ़े तारिका नृत्यशील।

कठिन-शब्दार्थ

दहन - जलन
महोदधि - महासागर
कूल - किनारा
महाकार - विशाल
कछार - किनारे की तर और नीची ज़मीन
दारुण शिखा - घोर ज्वाला
अशनिपात - वज्रपात
अदृष्ट - भाग्य
क्रान्त - जिसका दमन किया गया हो
पारद - पारा, एक तरल धातु
जीस्त - जीवन
पसारना - फैलाना
भीष्म - कठिन
जाग्रतविमर्श - जिसकी विचारशक्ति जागरूक हो
आविल - कलुषित
दुरित - पाप
वह्निकील - आग की लौ
नृत्यशील - नाचती हुई, झिलमिलाती हुई
कढ़ना - निकलना

16. श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'

आपका जन्म ग्वालियर राज्य के गुना नामक स्थान सन् 1908 ई० में हुआ था। जीवन का अधिकांश भाग लाहौ में बीता और अब देश के विभाजन के बाद से इन्दौर में रहते हैं

आप ही हिन्दी के ऐसे कवि हैं जिनमें एक साथ छायावा निराशावाद और प्रगतिवाद के दर्शन होते हैं। आपके जीव की निराशा और वेदना जब विद्रोह का रूप ले लेती हैं, त आप सामाजिक विषमता का अंत कर देने पर तुले प्रगतिवाद नज़र आते हैं, लेकिन जब आपके कवि को इस संसार में शां नहीं मिलती है, तो आपकी कल्पना अनन्त की ओर अपने पं फड़फड़ाने लगती है। यहीं पर आप छायावादी बन जाते हैं

आपकी कविता-पुस्तकों में 'आँखों में', 'अनन्त के प पर', 'अग्निगान' आदि उल्लेखनीय हैं।

कविता के अतिरिक्त आपने नाटक के क्षेत्र में भी अच्छ ख्याति प्राप्त की है। आपके एक दर्जन से ज़्यादा नाटक प्रकाशित हो चुके हैं।

कवि-कामना

भूमि का वासी गगन में
खोजता आधार अपना!

रह गयी कलियाँ कुँआरी,
प्रीत की प्यारी उपेक्षित
तारिकाओं को पिलाना
चाहता कवि प्यार अपना,

भूमि का वासी गगन में
खोजता आधार अपना।

सूर्य बनकर नील नभ में
चाहता है जगमगाना,
पर अंधेरे से निरंतर
भर रहा संसार अपना,

भूमि का वासी गगन में
खोजता आधार अपना।

इस ज़रा-सी ज़िंदगी से
है नही संतोष मन को,
जिंदगी को ही मिटाकर
कर रहा विस्तार अपना,
भूमि का वासी गगन मे
खोजता आधार अपना।

एक छोटे-से हृदय पर
भी नही अधिकार जिसका,
विश्व-भर पर चाहती
कवि-कामना अधिकार अपना!
भूमि का वासी गगन में
खोजता आधार अपना!

कठिन-शब्दार्थ

कुँआरी - अविवाहित कन्या
नभ - आकाश
विस्तार - फैलाव
कामना - चाह, इच्छा

17. श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

आपका जन्म सन् 1910 ई० में जलन्धर में हुआ था और शिक्षा लाहौर में हुई। पाकिस्तान के अलग हो जाने के बाद से आप स्थायी तौर पर इलाहाबाद के निवासी हो गये हैं।

आप नयी पीढ़ी के एक सफल कवि हैं। आपकी कविताओं की स्पष्टता और स्वाभाविक प्रवाह प्रशंसनीय हैं। प्रारंभ की रचनाएँ आपके व्यक्तिगत जीवन की पीड़ा से ओतप्रोत हैं, लेकिन समय के साथ ही आपकी भावनाओं में भी भारी परिवर्तन हो गया। व्यक्तिगत सुख-दुख की चिन्ता छोड़कर सामाजिक कल्याण की बात अब आप अधिक सोचने लगे हैं।

'प्रात-प्रदीप', 'ऊर्मियाँ', 'दीप जलेगा', 'बरगद की बेटी', 'चाँदनी रात' और 'अजगर' आपकी पुस्तकाकार प्रकाशित काव्य-रचनाएँ हैं।

आप कवि से भी अधिक सफल कहानीकार और एकांकीकार हैं। आपके प्रकाशित कहानी-संग्रहों, उपन्यासों और नाटकों की संख्या एक दर्जन से अधिक है।

प्रात-प्रदीप

प्राची की पलकों में जागा
सुन्दर सुखद विहान!
सहसा गूँज उठे नीड़ो में
मीठे मादक गान!

तम भागा, आभा इठलाई,
वन की कली-कली मुसकाई,
प्रकृति-परी ने ली अँगड़ाई,

तुहिनकणों ने फूलों के मुख
कर डाले अम्लान;
प्राची की पलकों में जागा
सुन्दर सुखद विहान!

कोयल कूक उठी आमों पर,
नाच रहे हैं मोर;

वन की मधुशालाओं को अलि
चले मचाते शोर!

पात-पात का सिहर उठा तन,
डाल-डाल पर आया यौवन,
उत्फुल्लित है वन-वन, उपवन;

मूक-मुखर, स्थिर-अस्थिर, आये
निष्प्राणों में प्राण;
प्राची की पलको में जागा
सुंदर सुखद विहान!

किन्तु विजन में भग्न क़ब्र पर
धुंधला प्रात - प्रदीप;
तिल-तिल जला-जला निज उर को
है अब मरण समीप।

स्नेहहीन यह जिसका जीवन,
जिसके शुष्क हृदय की धडकन
हो जाएगी मूक किसी क्षण;

इस विहान में देख रहा है
अब अपना अवसान!
प्राची की पलको में जागा
सुंदर सुखद विहान!

कठिन-शब्दार्थ

प्राची - पूरब
विहान - सबेरा
नीड़ - घोसला
परी - सुंदरी, अप्सरा
तुहिन-कण - ओस-कण
पात-पात - पत्ते-पत्ते
उत्फुल्लित - बहुत प्रसन्न , हरे भरे
"मूक अस्थिर" - प्रात-प्रदीप की सजीविनी आभा से मूक प्राणी भं बोल उठते हैं और बेसुध जीव भं स्फूर्ति पा जाते हैं।
विजन - एकात
धुधला - अस्पष्ट
तिल-तिल - कण-कण करके, क्षण-क्षण
शुष्क - सूखा
अवसान - अन्त

18. श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

आपका जन्म सन् 1915 ई० में हुआ था। आप कृष्णपुर, ज़िला फ़तेहपुर (उत्तर प्रदेश) के निवासी हैं। नागपुर से एम.ए. किया और आजकल जबलपुर के राबर्टसन कालेज मे प्रोफ़ेसर हैं।

आप उग्र यथार्थवादी और जीवन की तृष्णा के गायक कवि हैं। आपके गीतों में पिपासाकुल प्राणों की सारी कसक और वेदना मूर्त हो उठी है। जीवन की आशाओं और आकांक्षाओं का जैसा निखार आपकी कविताओं में हुआ है, वैसा अन्यत्र कम देखने को मिलता है। आपकी भाषा में बड़ा वेग रहता है और भावनाएँ तो भूकंप की तरह हलचल मचा देती हैं।

आपकी कविताओं के संग्रह हैं—'मधूलिका', 'अपराजिता', 'किरणबेला', 'करील', 'वर्षान्त के बाद' आदि।

आप एक प्रतिभाशाली कथाकार और निबन्ध-लेखक भी हैं। कई कहानी-संग्रह, उपन्यास और आलोचना की पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

विश्वास और सपना

विश्वास बडा है सपने से, संघर्ष सुखो से बढ़कर है'
जीवन में ले आते दोनो तूफ़ान नया, बलिदान नया ;
जीवन में कर जाते दोनो आह्वान नया, अरमान नया ,
जाती है टूट क्षणो में निर्बलता की जर्जर हथकडियॉ,
हो जाती नागिन-सी कराल ऑखो की ऑसू की लड़ियॉ ;
है स्वप्नरूप का निराधार सन्धान शून्य के शिखरों पर,
विश्वास-साधना-भूमि कठिन, तपता तन-मन जिसमें जलकर ;
सपना तितली को लजा-लजा उडता गीतो की पॉखो में,
कुम्हलाता तनिक धूप में खिल उठता कजरारी ऑखों में ;
विश्वास स्वप्न की रक्षा करने को उद्यत नंगा कर है,
विश्वास बडा है सपने से, सघर्ष सुखो से बढ़कर है !

*　　　　*　　　　*

जल-जलकर भी न पिघलती है नर के संकल्पों की ज्वाला,
है क्रुद्ध प्रभंजन से पिटता लतिका-सा दुर्बल मनवाला ;

विश्वास और सपना

मानव के जीवन में आता है दुख का झंझावात सबल
हर लेता है जब पंथ-ज्ञान अवरोधो का अभिमान प्रबल;
अस्थिरता की इन घडियो में विश्वास सदा दृढतर होता,
अपनी हुँकृत ललकारों से सपनो की दुर्बलता धोता;
सपना बैठा दिल पर छवि के तीरो के घाव गिना करता,
जी को मीठी स्मृतियो के अवचेतन आघात बिना करता।
विश्वास मनुज के जाग्रत पौरुष की अविरलता का स्वर है,
विश्वास बडा है सपने से, संघर्ष सुखो से बढकर है!

कठिन-शब्दार्थ

आह्वान - पुकार
कराल - भयंकर
सन्धान - निशाना लगाना
पॉख - पर, डैने
कजरारी - काली
उद्यत - तैयार
प्रभंजन - तूफ़ान
लतिका - लता
झझावात - वर्षा के साथ ऑधी
अवरोध - रुकावट
अवचेतन - बुरी चेतना
अविरलता - घनापन, पूर्णता

19. श्री शिवमंगलसिंह 'सुमन'

आपका जन्म सन् 1916 ई० में हुआ था। हिन्दू यूनिवर्सिटी से एम. ए. पास करने के बाद डी. लिट. की उपाधि प्राप्त की। आजकल नेपाल में प्रोफ़ेसर हैं।

आप नयी पीढ़ी के प्रगतिशील कवियों में काफ़ी ख्याति पा चुके हैं। काव्य के क्षेत्र में निराशावाद और रहस्यवाद के नाम पर जो पलायन की प्रवृत्ति पायी जाती है, उसपर आपने करारी चोटें की हैं। आपने जीवन की पीड़ा को गीतों में बाँधा है, शोषितों की मुक्ति के लिए स्वतंत्रता और विद्रोह के गीत गाये हैं और अब नया संसार बनाने पर तुले नज़र आते हैं। आपकी कल्पना सुंदर और व्यापक है, भाषा स्वाभाविक और प्रौढ़ है तथा छंदों पर आपका असाधारण अधिकार है।

आपकी कविताओं के तीन संकलन प्रकाशित हो चुके हैं—'हिल्लोल', 'जीवन के गान' और 'प्रलयसृजन'।

संघर्ष

यह हार एक विराम है,
जीवन महा संग्राम है,
तिल-तिल मिटूँगा, पर दया की भीख मै लूँगा नही ;
वरदान माँगूँगा नही ।

स्मृतिसुखद प्रहरों के लिए,
अपने खण्डहरों के लिए
यह जान लो, मैं विश्व की संपत्ति चाहूँगा नही ;
वरदान माँगूँगा नहीं !

क्या हार में, क्या जीत में
किंचित् नही भयभीत मैं,
संघर्षपथ पर जो मिले, यह भी सही वह भी सही ,
वरदान माँगूँगा नही !

लघुता न अब मेरी छुओ,
तुम हो महान, बने रहो,
अपने हृदय की वेदना मै व्यर्थ त्यागूँगा नही ;
वरदान माँगूँगा नही !
चाहे हृदय को ताप दो,
चाहे मुझे अभिशाप दो,
कुछ भी करो, कर्तव्यपथ से किंतु भागूँगा नहीं ;
वरदान माँगूँगा नहीं !

कठिन-शब्दार्थ

विराम - ठहराव, आराम
स्मृतिसुखद प्रहर - वे प्रहर (तीन घंटे का समय एक प्रहर होता है) जिनकी याद करने से बड़ा आनन्द होता है।
किंचित् - ज़रा भी
अभिशाप - शाप, लाछन

20. श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग के प्रारंभ में जिस महाकवि का आशीर्वाद खड़ी बोली को मिला, वे थे श्री 'हरिऔध' जी। आप व्रजभाषा के भी अच्छे कवि थे, उसपर आपका पूरा अधिकार था। यद्यपि आप पहले व्रजभाषा मे लिखते थे, बाद को द्विवेदी-युग के प्रभाव से खड़ी बोली में भी लिखने लगे। आपका स्थान हिन्दी साहित्य में विशेष महत्व रखता है।

श्री हरिऔधजी का 'प्रियप्रवास' खड़ी बोली का सर्वप्रथम महाकाव्य है। भाव, भाषा और शैली तीनों की दृष्टि से वह पूर्ण मौलिक रचना है। 'प्रियप्रवास' के पश्चात् आपने 'चुभते चौपदे' और 'चोखे चौपदे' नामक दो मुहावरा-प्रधान ग्रंथ भी लिखे हैं। 'रसकलश' आपका नवरसों की व्याख्या-संबंधी एक ग्रंथ है। 'वैदेही-वनवास' आपका अंतिम महत्वपूर्ण काव्य है।

आपका जन्म सन् 1865 ई० में हुआ और मृत्यु 1947 में हुई थी।

फूल और काँटा

हैं जनम लेते जगह में एक ही,
एक ही पौधा उन्हें है पालता।
रात में उनपर चमकता चाँद भी,
एक ही-सी चाँदनी है डालता ॥

मेह उनपर है बरसता एक-सा,
एक-सी उनपर हवाएँ हैं बही।
पर सदा ही यह दिखाता है हमें,
ढंग उनके एक-से होते नही ॥

छेदकर काँटा किसीकी उँगलियाँ,
फाड देता है किसीका वर वसन,
प्यार डूबी तितलियों का पर कतर
भौंर का है बेध देता श्याम तन ॥

फूल और काँटा

फूल लेकर तितलियो को गोद में,
भौंर को अपना अनूठा रस पिला,
निज सुगंधों औ' निराले रंग से
है सदा देता कली जी की खिला ॥

है खटकता एक सबकी आँख में,
दूसरा है सोहता सुर-सीस पर,
किस तरह कुल की बड़ाई काम दे,
जो किसीमें हो बड़प्पन की क़सर ?

कठिन-शब्दार्थ

मेह - मेघ, बादल
वर - श्रेष्ठ
वसन - वस्त्र
कतर - काटकर
सुर-सीस - देवता का सिर
सोहना - शोभित होना
क़सर - कमी

दूसरी क्यारी

(उर्दू)

1. डा० शेख़ मुहम्मद 'इक़बाल'

आप सन् 1875 ई० में स्यालकोट (पंजाब) में पैदा हु इंग्लैंड में बैरिस्टरी की सनद हासिल की और लाहौ वक़ालत करने लगे। सन् 1937 में आपकी मृत्यु हुई।

शायर की हैसियत से सन् 1899 में आप जनता के सा आये। विलायत जाने से पहले आप शुद्ध भारतीय नज़र अ थे। भारत का हित अपना ईमान, हिन्दू-मुसलिम एकता अ मज़हब और आज़ादी अपना लक्ष्य समझते थे और ये भाव उनकी उस समय की कविताओं में छलकते हैं। लेकि विलायत से लौटने के बाद आप पूरे संप्रदायवादी बन और कविता का भी स्वर उसके साथ ही बदल गया।

उर्दू-फ़ारसी में आपकी कविताओं के एक दर्जन से अधि संकलन प्रकाशित हो गये हैं। सच्चाई, सादगी और नवीन के साथ आपने शायरी में कल्पना, भाव और भाषा के ऐसे भरे हैं कि सुननेवाले सकते में आ जाते हैं। मंज़रनिगा (प्रकृतिवर्णन) और फ़लसफ़ा (दर्शन) का मिश्रण कर आप उर्दू शयारी में चार चाँद लगा दिये। रवि बाबू के ब आपका ही नाम आता है जिन्होंने शायरी की बदौल अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की।

आपकी उर्दू कविताओं के संग्रह :—

(1) बाँग दिरा (2) कुल्लियात-ए-इक़बाल।

एक आरज़ू

दुनिया की महफ़िलों से उकता गया हूँ या रब!
क्या लुत्फ़ अंजुमन का जब दिल ही बुझ गया हो?
शोरिश से भागता हूँ, दिल ढूँढता है मेरा,
ऐसा सकूत जिसपर तक़रीर भी फ़िदा हो॥

मरता हूँ खामोशी पर, य' आरज़ू है मेरी—
दामन में कोह के इक छोटा-सा झोपड़ा हो।
हो हाथ का सिरहाना, सब्ज़े का हो बिछौना।
शरमाए जिससे जलवत, खिलवत में वोह अदा हो॥

मानूस इस क़दर हो सूरत से मेरी बुलबुल।
नन्हें-से दिल में उसके खटका न कुछ भरा हो।
रातों के चलनेवाले रह जाएँ थकके जिस दम।
उम्मीद उनकी मेरा टूटा हुआ दिया हो॥

बिजली चमकके उनको कुटिया मेरी दिखा दे।
जब आसमाँ पै हरसू बादल घिरा हुआ हो॥

पद्य-प्रवेशिका

फूलों को आये जिस दम शबनम वज़ू करा
रोना मेरा वज़ू हो, नाला मेरी दुआ हो
हर दर्दमंद दिल को रोना मेरा रुला दे।
बेहोश जो पड़े हैं, शायद उन्हें जगा दे॥

कठिन-शब्दार्थ

महफ़िल - सभा
रब - ईश्वर
लुत्फ - आनन्द
सकूत - मौन, चुप्पी
कोह - पहाड़
जलवत - अपने आपको सबके सामने प्रकट करना (दिखावा)
ख़िलवत - एकात, जलवत का उलटा
मानूस - हिला-मिला
हरसू - हर तरफ़
शबनम - ओस
वज़ू - प्रार्थना के पहले शुद्धि के हाथ पाँव धोना
नाला - रोकर प्रार्थना करना

2. मीर मुहम्मद तक़ी 'मीर'

आपका जन्म सन् 1709 ई० में आगरे में हुआ था और 1809 में लखनऊ में आपकी मृत्यु हो गयी।

आपकी ज़िन्दगी दुखमय थी। इसलिए आपके शेर भी गमगीन और चुटीले दिलों पर खास असर करनेवाले हैं। आपकी कविता वेदना और आह की सजीव मूर्ति है। अपने जीवन में ही आपको इतनी शोहरत हासिल हुई कि आपकी कविता सौग़ात के तौर पर लोग दूर-दूर ले जाते थे। आपकी कविता की वही ताज़गी आज भी महसूस होती है, जो डेढ़ सौ साल पहले होती थी। इसलिए उर्दू साहित्य के इतिहास के लेखक आपको 'ख़ुदाये सख़ुन' मानते हैं।

आप दिल्ली-केन्द्र के कवि थे। इसलिए आपकी कविता दाखिली रंग की (subjective) है, जो भाव को प्रधानता देती है। आपका नारा था 'जान हो तो जहान है', कविता की जान है भाव; और आपकी कविताएँ इनके अच्छे उदाहरण हैं। आपके कुल मिलाकर नौ दीवान (ग़ज़लों के संग्रह) पाये जाते हैं।

चन्द शेर

सुबह तक शमअ सर को धुनती रही ।
क्या पतंगे ने इल्तमास किया ?

शर्त सलीक़ा है हर एक अम्र में ।
ऐब भी करने को हुनर चाहिए ॥

सख़्त काफ़िर था जिसने पहले 'मीर' ।
मज़हबे इश्क़ अख़्तियार किया ॥

कहता है कौन तुझको याँ यह न कर तू वोह कर
पर हो सके तो प्यारे, दिल में टुक जगह कर

काबा पहुँचा तो क्या हुआ ऐ शेख ।
सअई कर टुक पहुँच किसी दिल तक ॥

जिसने सर खींचा दयारे इश्क़ में ऐ बुलहविस
वोह सरापा-आरज़ू आख़िर जवाँ मारा गया

चमन का नाम था सुना, वले न देखा हाय ।
जहाँ में हमने कफ़स ही में ज़िन्दगानी की ॥

चंद शेर

दर्दमंदों से तुम्ही दूर फिरा करते हो कुछ।
पूछने वर्ना सभी आते है बीमार के पास॥

बूए-खूँ आती है बादे सुबहगाही से मुझे।
निकली है बेदर्द हो शायद किसी घायल के पास॥

बहुत रोने से रुसवा कर दिखाया।
न चाहत की छुपी हमसे अलामत॥

कठिन-शब्दार्थ

शमअ - दीप
इल्तमास - निवेदन, प्रार्थना
सलीक़ा - तमीज़, लियाक़त
अम्र - काम
काफिर - ईश्वर को न माननेवाला
काबा - मक्का शहर का एक स्थान जहॉं हज को जाते है
सअई (सई) - सिफ़ारिश, कोशिश
दयारे इश्क़ - प्रेम के मार्ग में
बुलहविस -विषयासक्त
सरापा-आरज़ू - अभिलाषा की मूर्ति
वले - लेकिन
जहॉं - संसार
कफस - पिंजड़ा
बादे सुबहगाही - प्रातःकालीन समीर
रुसवा - बदनाम
अलामत - चिन्ह

3. सैयद अकबर हुसेन 'अकबर' इलाहाबादी

आप सन् 1846 ई० में पैदा हुए और 1921 में आपकी मौत हुई। आपका घर इलाहाबाद के क़रीब था।

आप ग्यारह वर्ष की आयु में ही कविता करने लगे थे आपके पहले के कवि हमेशा विरह में आँसू बहाते थे, मगर आपने सबसे पहले उर्दू शायरी में जुदागाना (हास्यरस) का रंग आबाद किया। आपका हास्य विदूषकों का-सा नहीं, मगर शिष्ट होने से माँ-बहनों के सामने भी पढ़ जाने योग्य है और पढ़कर दुश्मन भी हँसे विना नहीं रह सकते।

आपमें सांप्रदायिकता की बू तक न थी। सरकारी नौकर (जज) होने पर भी राजनीति में गरम विचार रखते थे। आपकी कविताएँ राजनीति के रंगे सियारों पर काफी चोट पहुँचाने वाली हैं, वे मीठी छुरी कहलाती हैं। इस बात में आपका अनुकरण भी कोई न कर सका। आपने कई नीतिसंबन्धी ग़ज़लें भी लिखी हैं। सरलता, प्रवाह, ऊँचे विचार और उत्तम उपमाएँ आपकी ग़ज़लों के प्राण हैं।

आप हिन्दी और उर्दू दोनों के प्रेमी थे। आपकी कविताओं के तीन संग्रह छपे हैं।

चुने हुए शेर

रोना है तो इसीका, कोई नही किसीका।
दुनिया है और मतलब, मतलब है और अपना ॥

खुशी बहुत है जहाँ में, हमारे घर न सही।
मलूल क्यों रहें दुनिया के इन्तज़ाम से हम ?

तिफ्ल में बू आये क्या माँ-बाप के अतवार की ?
दूध तो डिब्बे का है, तालीम सरकार की ॥

जवाले क़ौम की इब्तदा वही थी कि जब।
तिजारत आपने की तर्क, नौकरी कर ली ॥

नौकरों पर जो गुजरती है, मुझे मालूम है।
बस, करम कीजै, मुझे बेकार रहने दीजिये ॥

तरीक़े मग़रिबी की क्या यही रोशनज़मीरी है।
खुदा को भूल जाना और महवे मासिवा होना ॥

पद्य-प्रवेशिका

बहुत रोये वो स्पीचों में हिक्मत इसको कहते है ।
मैं समझा खैरख़्वाह उनको, हिमाक़त इसको कहते हैं ।।

जो खिरदमंद है वह खूब समझते हैं य बात
खैरख़्वाही वो नही है जो हो डर से पैदा ।

अश्क़ आँखों में आ जाय एवज़ नीद के साहब ।
ऐसा भी किसी शब सुनो अफ़साना किसीका ।।

मेरा यह शेर अकबर एक दफ्तर है मआनी का ।
कोई समझे न समझे हम तो सब कुछ कह गुज़रते हैं ।।

कुछ सनअतो हिरफ़त प भी लाज़िम है तवज्जह ।
आख़िर य गवर्मेंट से तनख़्वाह कहाँ तक ?

हम ऐसी सब किताबें काबिले ज़ब्ती समझते हैं ।
जिन्हें पढ़-पढ़के लड़के बाप को ख़ब्ती समझते हैं ।।

कठिन-शब्दार्थ

मलूल - उदास
तिफ़्ल - बच्चा
अतवार - रंग-ढंग, चाल-चलन
ज़वाल - अवनति
इब्तदा - आरंभ
तर्क करना - छोड़ना
करम - कृपा, मेहरबानी
मग़रिबी - पाश्चात्य, यूरोपीय
रोशनज़मीरी - समझदारी, बुद्धिमत्ता
महो मासिवा - बेहद अपने में ही (महो) तल्लीन; अपने आपको ही भूला हुआ

हिक़मत - युक्ति
हिमाक़त - मूर्खता
खिरदमंद - बुद्धिमान
ख़ैरख्वाही - हितचिंतन
शब - रात
एवज़ - बदले में

मआनी - अर्थ
सनअतो हिरफ़त - हस्तकौशल,
दस्तकारी
लाज़िम - ज़रूरी, अनिवार्य
तवज्जह - ध्यान
ख़ब्ती - पागल

4. मौलाना अल्ताफ़ हुसैन 'हाली'

आप हिन्दुस्तान के मुसलमानों को अपनी शायरी के ज़रिये बेदार करनेवाले कवि थे। आपका जन्म सन् 1840 ई० में और मृत्यु 1916 में हुई।

शुद्ध काव्य की दृष्टि से आप अव्वल दर्जे के शायर नहीं, तो भी उर्दू साहित्य में क्रांति का चिराग़ जलाकर नया रास्ता खोज निकालनेवाले आप ही हैं। 'मुसद्दसे हाली' राष्ट्रीय मुसलमानों की गीता है।

आपके पहले के कवि या तो आशिक़ाना ग़ज़लें गाते थे या अमीरों की चापलूसी किया करते थे। लेकिन आपने उर्दू शायरी का 'ओवरहालिंग' करके उसकी काया पलट दी। हुस्ने मनाज़िर (प्रकृतिसौन्दर्य), हुब्बेवतन—ऐसे विषयों को गज़लों में स्थान देनेवाले सर्वप्रथम कवि आप ही हुए। आपने मुसलमानी क़ौम के लिए ही अधिकतर कविताओं की रचना की, तो भी उनमें सांप्रदायिकता की बू तक नहीं आयी।

सादगी और सरलता आपकी शायरी की ख़ूबी है। आपकी हर कविता से देश और क़ौम के प्रति ईमानदारी झाँकती है।

आपकी रचनाएँ हैं:—(1) तअस्सुब व इन्साफ़ (2) रहमो इन्साफ़ (3) वर्षाऋतु (4) निशाते उम्मीद (5) हुब्बे वतन (6) मुसद्दसे हाली (7) मर्सिये ग़ालिब (8) चुपकी दाद (9) मुनाजाते बेवा (10) कुल्लियाते हाली।

(1)

कौम की इज़्जत

ऐ माओ ! बहनो ! बेटियो ! दुनिया की जीनत तुमसे है ।
मुल्कों की बस्ती हो तुम्ही, क़ौमों की इज़्ज़त तुमसे है ।
तुम घर की हो शहजादियाँ, शहरो की हो आबादियाँ ।
ग़मगी दिलों की शादियाँ, दुख-सुख में राहत तुमसे है ॥

नेकी की तुम तस्वीर हो, इज़्जत की तुम तदबीर हो ।
हो दीन की तुम पासबाँ, ईमाँ सलामत तुमसे है ।
मर्दों में सतवाले थे जो, सत अपना बैठे कब के खो ।
दुनिया में ऐ सतवन्तिया, ले-देके अब सत तुमसे है ॥

मूनिस हो ख़ाविन्दो की तुम, ग़मख्वार फर्जन्दों की तुम ।
तुम बिन है घर वीरान सब, घर-भर में बरकत तुमसे है ।
तुम आस हो बीमार की, ढारस हो तुम बेकार की ।
दौलत हो तुम नादार की, उसरत में इशरत तुमसे है ॥

(2)

मुसद्दस

ज़माने का दिन-रात है ये इशारा।
कि है आरती में मेरी याँ गुज़ारा।
नही पैरवी जिनको मेरी गवारा,
मुझे उनसे करना पड़ेगा किनारा॥
सदा एक ही रुख़ नही नाव चलती।
चलो तुम उधर को हवा है जिधर की॥

मशक़्क़त को मिहनत को जो आर समझें,
हुनर और पेशे को जो ख़्वार समझें,
तिजारत को, खेती को दुश्वार समझें,
फिरंगी के पैसे को मुरदार समझें॥
तन-आसानियाँ चाहें, और आबरू भी।
वोह क़ौम आज डूबेगी 'गर कल न डूबी॥

कठिन-शब्दार्थ

ज़ीनत - शोभा
शादी - ख़ुशी
राहत - आराम
इज़्ज़त - सदाचार, बुरे कामो से बचना
पासबाँ - पहरेदार
सलामत - रक्षित
मूनिस - मित्र, सहायक
ग़मख़्वार - सहानुभूति रखनेवाला

क़ौम की इज़्ज़त

फ़र्ज़न्द - पुत्र
बरकत - लाभ , अंत
नादार - ग़रीब
उसरत - कठिनाई, ग़रीबी
इशरत - आनद-मगल
आश्ती - प्रेम-संगठन
पैरवी - अनुसरण

गवारा - पसंद
किनारा करना - दूर रहना
मशक़्क़त - परिश्रम, कष्ट
आर - शरम, बदनामी
ख़्वार - ख़राब
मुरदार - अपवित्र
तन-आसानी - विलास

5. समदयारख़ाँ साग़र 'निज़ामी'

आपका जन्म सन् 1905 ई० में अलीगढ़ में हुआ। बचपन से ही आपको शायरी करने का शौक़ था। मुशायरों में आपकी कविता पढ़ने की धूम है।

आप मनुष्यप्रेम को सबसे बड़ा मज़हब समझते हैं। आप देशभक्त, सुधारक और प्रगतिशील शायर हैं। देशप्रेम के सामने आप सब-कुछ हेय समझते हैं।

आप कुछ साल 'सीमाब' के संपादक रहे, जिसके ज़रिये आपकी अनेक कविताएँ प्रकाशित हुईं।

आजकल आप बंबई में रहते हैं। 'एशिया' उर्दू मासिक पत्रिका के संपादन के अलावा फ़िल्मों के लिए भी गीत, कहानियाँ आदि लिखते हैं।

क़ौमी गीत

दावा है हर आन हमारा,
सारा हिन्दुस्तान हमारा।

जंगल और गुलज़ार हमारे, दरिया और कुहसार हमारे,
कूचे और बाजार हमारे, फूल हमारे, खार हमारे;
हर घर हर मैदान हमारा,
सारा हिन्दुस्तान हमारा!

गो नहीं हममें फ़ौजी कुव्वत फिर भी बहुत है दिल में हिम्मत,
और हमारे साथ है कुदरत, अब कोई ताक़त कोई हुकूमत
रोक तो दे तूफान, हमारा!
सारा हिन्दुस्तान हमारा!

हमसे भारत की रौनक़ है, आजादी दिन-रात सबक़ है,
अपनी धनुक है, अपनी शफ़क़ है, हर ज़र्रे पर अपना हक़ है;
खेत अपने, दहक़ान हमारा!
सारा हिन्दुस्तान हमारा!

पद्य-प्रवेशिका

हिन्द का मालिक हर हिन्दी हो, सिर्फ़ यहाँ एक क़ौम बसी हो,
बार न पाये ख़्वाह कोई हो, चाहे वह ख़ुद अपनी ही ख़ुदी हो;
देख ज़रा अरमान हमारा,
सारा हिन्दुस्तान हमारा!

कठिन-शब्दार्थ

गुलज़ार - बाग़
कुहसार - पहाड़ी प्रदेश
ख़ार - काँटा
धनुक - इद्रधनुष
शफ़क़ - सूर्य के उदय अस्त के समय की आकाश की लाली
दहक़ान - गँवार, देहाती
बार पाना - प्रवेश पाना
ख़्वाह - चाहे

6. 'जोश' मलीहाबादी

नवीन युग के वर्तमान उर्दू शायरों में आपका नाम पहले आता है। आपका जन्म मलीहाबाद (लखनऊ) में सन् 1896 में हुआ।

कॉलिज छोड़ने के बाद आप निज़ाम स्टेट में कुछ साल तक काम करते रहे। इसके बाद इस्तीफ़ा देकर देहली से 'कलीम' मासिक पत्र निकालने लगे। आप स्पष्टवादी हैं और अपने भावों को रंगीन शब्दों में छिपाकर नहीं, बल्कि वीर सैनिक की भाँति खोलकर कहते हैं। तमाम प्रतिक्रियावादी शक्तियों पर आपने क़रारी चोटें की हैं।

आपने प्राकृतिक सौन्दर्य, देश-भक्ति, हिन्दू-मुसलिम एकता, किसान-मज़दूर आदि पर काफ़ी लिखा है। आपका 'बग़ावत के गीत' नामक कविता-संग्रह हिन्दी में भी निकला है।

इधर कुछ सालों से आप 'आजकल' (उर्दू) के संपादक थे। मगर उसे छोड़-छाड़कर अब आप पाकिस्तान चले गये हैं। भारत में आपको काफ़ी सम्मान प्राप्त था, सरकार ने भी काफ़ी सुविधाएँ आपको दे रखी थीं, लेकिन सबके बावजूद आपने अपने वतन से नाता तोड़ लिया। 'शायरे इंकलाब' कहलानेवाले 'जोश' की इस हरकत पर सभी को आश्चर्य है, दुख है।

(1)

मर्द

मर्द वह कब है भँवर से जो उभर सकता नहीं ॥
हक़ ही जीने का नही उसको, जो मर सकता नही ॥
जिसको जिल्लत का न हो अहसास वोह नामर्द है।
तंग पहलू है वोह दिल जो बेनियाजे दर्द है ॥
हक़ नही जीने का उसको जिसका चेहरा जर्द है।
खुद्कशी है फ़र्ज़ उसपर खून जिसका सर्द है ॥

(2)

हराम

दौरे महकूमी में राहत कुफ्र इशरत है हराम।
महवशों की चाह, साक़ी की मुहब्बत है हराम ॥
इल्म नाजाइज़ है, दस्तारे फ़ज़ीलत है हराम।
इन्तहा ये हैं, ग़ुलामों की इबादत है हराम ॥

कूए जिल्लत में ठहरना क्या, गुजरना भी हराम।
सिर्फ़ जीना ही नहीं, इस तरह मरना भी हराम॥

कठिन-शब्दार्थ

जिल्लत - तिरस्कार, अनादर
अहसास - अनुभव
बेनियाज - बधनरहित, लापरवाह
ज़र्द - पीला
सर्द - ठडा
महकूमी - पराधीनता
कुफ़्र - धर्मविरुद्ध आचरण
इशरत - सुखभोग
महवश - चन्द्र के समान मुखवाली
नाजाइज - नियमविरुद्ध
दस्तारे फजीलत - विद्यायुक्त होना
इन्तहा - चरम सीमा
इबादत - पूजा
कू - गली

7. अख़्तर शीरानी

आप पंजाब के रहनेवाले हैं। आपके गीत वहाँ के बच्चे-बच्चे की ज़बान पर हैं। आप कभी प्रेम के मधुर स्वर से हृदय-तंत्री को निनादित करते हैं, तो कभी खेतों पर काम करनेवाली और पनघटों पर पानी भरनेवाली माताओं और बहनों की आशाओं को गीतों का रूप देते हैं। आप वतन के पुजारी और क़ौम के प्रेमी हैं। इसलिए आपकी कविताओं में ग्रामीण जनता के दिल की धड़कन सुनायी देती है और हर भाव पर वह खुशबू पायी जाती है, जो पंचनदों के देश की उपजाऊ ज़मीन से निकली है।

आख़िरी उम्मीद

मेरा नन्हा जवाँ होगा !

ख़ुदा रक्खे जवाँ होगा, तो ऐसा नौजवाँ होगा ।
हसीनो कामराँ होगा, दिलेरो तेगराँ होगा ॥

बहुत शीरीज़बाँ होगा, बहुत शीरीयाँ होगा ।
यह महबूबे जहाँ होगा, मेरा नन्हा जवाँ होगा ॥

वतन और क़ौम की सौ जान से ख़िदमत करेगा यह ।
ख़ुदा की, ख़ुदा के हुक्म की इज़्ज़त करेगा यह ॥

हर अपने और पराये से सदा उल्फ़त करेगा यह ।
हर इक पर मेहरबाँ होगा, मेरा नन्हा जवाँ होगा ॥

मेरा नन्हा बहादुर एक हथियार उठाएगा ।
सिपाही बनके सूए अर्सगाहे रज़्म जाएगा ॥

वतन के दुश्मनो के ख़ून की नहरें बहाएगा ।
और आख़िर कामराँ होगा, मेरा नन्हा जवाँ होगा ॥

वतन की जंगे-आज़ादी में जिसने सर कटाया है ।
यह उस शैदाए मिल्लत बाप का पुरोजोश बेटा है ॥

अभी से आलमे तिफ्ली का हर अंदाज़ कहता है ।
वतन का पासबाँ होगा, मेरा नन्हा जवाँ होगा ॥

वतन के नाम पर इक रोज यह तलवार उठाएगा ।
वतन के दुश्मनो के कुंजे तुरबत में सुलाएगा ॥

और अपने मुल्क को ग़ैरो के पंजे से छुडाएगा ।
ग़रूरे ख़ानवाँ होगा, मेरा नन्हा जवाँ होगा ॥

सफ़े दुश्मन में तलवार इसकी जब शोले गिराएगी ।
शुजाअत बाज़ुओं में बनके बिजली लहलहाएगी ॥

ज़बी की हर शिकन में मर्गे दुश्मन थरथराएगी ।
यह ऐसा तेगराँ होगा, मेरा नन्हा जवाँ होगा ॥

सरे मैदान जिस दम दुश्मन इसको घेरते होंगे ।
बजाए खूँ रगो में इसकी शोले तैरते होंगे ॥

सब इसके हमल-ए-शेराना से मुँह फेरते होगे ।
तहोबाला जहाँ होगा, मेरा नन्हा जवाँ होगा ॥

कठिन-शब्दार्थ

कामराँ - सफल
तेगराँ - बहादुर
शीरीज़बाँ - मधुरभाषी
शीरींबयाँ - मीठी बातों की चर्चा करनेवाला
महबूब - प्रेमपात्र
उल्फ़त - प्रेम
सूए अर्सगाहे रज़्म जाना - वीरगति प्राप्त करना
शैदाए मिल्लत - एकता का प्रेमी
पुरजोश - जोशीला
आलमे तिफ़्ली - बचपन
पासबाँ - रक्षक
कुंज - किनारा, कोना
तुरबत - क़ब्र
ग़रूरे ख़ानवाँ - कुलाभिमानी
सफ़ - पंक्ति
शुजाअत - वीरता
ज़बी - माथा
शिकन - सिकुड़न
मर्ग - मृत्यु
बजाए ख़ूँ - ख़ून के बदले
हमल-ए-शेराना - शेर का-सा हमला
तहोबाला होना - बिलकुल उलट-पलट हो जाना

8. प्रो० रघुपतिसहाय 'फ़िराक' गोरखपुरी

आप इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में अंग्रेज़ी के प्राध्यापक हैं। आप शुरू से ही ग़ज़लें लिखते आ रहे हैं, जिनमें प्रेम की प्रधानता है।

शायरी के लिए अल्फ़ाज़ का इन्तखाव और तर्ज़ अदा निहायत ज़रूरी हैं। इन दोनों चीज़ों के साथ खयालात की पाकीज़गी शामिल हो, तो सोने में सुगंध आ जाय। आपकी शायरी मे इन तीनों का इज्तमा (मिश्रण) है। इसलिए शायरों में क़द्रे अव्वल का (प्रथम श्रेणी) सम्मान आपको हासिल है। इधर कुछ अर्से से आपके संपादकत्व में उर्दू के बेहतरीन शायरों की कविताएँ हिन्दी में प्रकाशित होने लगी हैं जिनमें 'ज़ंजीरें टूटती हैं', 'रागविराग', 'झंकार', 'नज़ीर की वानी' आदि क़ाविले-ज़िक्र हैं। 'धरती की करवट' में आपकी चुनी कविताएँ संगृहीत हैं।

रुबाइयाँ

(1)

घर छोड़े हुओ की कोई मंज़िल न सही,
होती नही सहल कोई मुश्किल न सही;
हस्ती की रात काट देने के लिए
वीरान सही किसीकी महफ़िल न सही।

(2)

सोनेवालों को क्या जगाती दुनियाँ?
थे कौन फ़साने जो सुनाती दुनियाँ?
दुनियाँ का भरम खुला न पूछो किस वक़्त,
जब आँख खुली तो देखी जाती दुनियाँ।

(3)

कुछ अहले-हवस की भी तमन्ना देखी,
ललचाये दिलो की भरी दुनियाँ देखी;
देखी है जो जिन्दगी शहीदों की तेरे,
तुझपर मरनेवाली है देखा-देखी।

(4)

करते नही कुछ तो काम करना क्या आये ?
जीते जी जाँ से गुजरना क्या आये ?
रो-रोके मौत माँगनेवालों को
जीना नही आ सका तो मरना क्या आये ?

कठिन-शब्दार्थ

सहल - सरल
वीरान - उजड़ा हुआ
महफिल - सभा
फ़साना - कल्पित कहानी
अहले हवस - कामी, लोभी
तमन्ना - कामना
जाँ से गुज़रना - मरना

9. सरदार जाफ़री

आप उर्दू के तरक़्क़ीपसन्द अदीबों में से एक हैं। सन् 1937 ई० में स्व० प्रेमचन्दजी के नेतृत्व में जिस 'प्रगतिशील साहित्य-संघ' की स्थापना हुई, उसमे आप शुरू से ही बराबर भाग लेते रहे हैं। आपका 'एशिया जाग उठा' काव्य काफ़ी मशहूर होकर कई भाषाओं में अनुवादित हो चुका है। आप पूरे जनवादी हैं तथा आपको हिन्दुस्तान की सभ्यता और संस्कृति पर बेहद अभिमान है। आपका यह अटल विश्वास है कि वही सही तहज़ीब है जो अमन-पसन्द है। आपकी भाषा सरल है।

तहज़ीब की गंगा

सिक्को में जो बिक जाय वो तहज़ीब नही,
महलों में जो इतराये वो तहज़ीब नही,
मीरास नही गिने हुओं की तहज़ीब,
इन्साँ से जो कतराये वो तहज़ीब नही।

तहज़ीब से दूर रह सकेंगे न अवाम,
तहज़ीब इन्साँ की बुज़ुर्गी का नाम;
तहज़ीब के गुल चमन-चमन खिलते है,
तहज़ीब तो है बादे बहारी का पयाम।

रोटी भी है, कपड़ा भी, कुतुबख़ाना भी,
तस्वीर भी, शायरी भी, अफ़साना भी;
इन्सान की नाप-तोल करने के लिए
तहज़ीब है एक वज़्न भी, पैमाना भी।

तहज़ीब की गंगा

तहज़ीब है माँ का प्यार, बच्चों की ख़ुशी,
आँचल की हसीन बेल, कुरतों की कली,
गेसू की महक है, अबरुओ का जादू,
तहजीब है अँखडियो की ख़ामोश हँसी।

तहजीब ये है कि कोई ग़मनाक न हो,
पाकीज हरेक शै हो नापाक न हो,
पामाल न हो ख़ाक किसी बस्ती की,
इन्साँ का ग़रेबान कहीं चाक न हो।

तहजीब का हुस्न अम्न के गीत में है,
खेतों की लहक, कलों के संगीत में है;
नफ़रत में, लडाई में नहीं है तहज़ीब,
तहजीब का राज प्रेम की जीत में है।

छलके तो मयो-सागरो-मीना बनकर,
लपके तो हयाते-नौ का शोला बनकर,
साहिल पे कोई रहे न प्यासा हरगिज,
तहज़ीब है वो बहे जो गंगा बनकर।

कठिन-शब्दार्थ

तह्ज़ीब - संस्कृति, सभ्यता
मीरास - पैतृक सपत्ति
अवाम - जन-साधारण
बुज़ुर्गी - बड़प्पन
बादे बहारी - वसन्त की हवा
क़ुतुबख़ाना - पुस्तकालय
पयाम - सन्देश
वज़्न - वज़न, तौल
गेसू - अलक , ज़ुल्फ़
अबरु - भौंह
अँखड़ियाँ - आँखें
ग़मनाक - दुखपूर्ण

पाकीज़ - पवित्र
शै - वस्तु
पामाल - कुचला हुआ
ग़रेबान - कुर्ते आदि में गले का भाग
चाक होना - फट जाना
अम्न - अमन, शान्ति
मय - शराब
साग़र - प्याला
मीना - बोतल
हयाते-नौ - नवजीवन
शोला - आग की लपट
साहिल - किनारा

10. साहिर लुधियानवी

साहिर की शायरी आज की शायरी है। तरक़्क़ीपसन्द शायरों में आपका अहम स्थान है। आप कोरी कल्पना के घोड़े नहीं दौड़ाते, बल्कि अपने मीठे-कड़ुवे अनुभवों को गीतों में फूँककर श्रोताओं या पाठकों को जोश से भर देते हैं। आप जीवन की असफलताओं से निराश न होकर उनके प्रति विद्रोह की घोषणा करते हैं। इसलिए आपकी कविताएँ नव जागरण की प्रेरणा लेकर लोगों की ज़बानों पर थिरकती हैं।

आप आजकल फ़िल्मों के लिए गीत लिखा करते हैं। आपके गीत काफ़ी लोकप्रिय हुए हैं और अभी आपसे उर्दू अदब को बहुत-सी आशाएँ हैं।

रात के राही

रात के राही थक मत जाना, सुबह की मंज़िल दूर नहीं।

घरती के फैले आँगन में
पल दो पल है रात का डेरा;
ज़ुल्म का सीना चीरके देखो,
झाँक रहा है नया सबेरा।

ढलता दिन मजबूर सही, चढ़ता सूरज मजबूर नहीं।
रात के राही थक मत जाना, सुबह की मंजिल दूर नहीं॥

सदियों तक चुप रहनेवाले
अब अपना हक़ लेके रहेंगे,
जो करना है खुलके करेंगे,
जो कहना है साफ़ कहेंगे।

जीते जी घुट-घुटके मरना इस जुग का दस्तूर नहीं।
रात के राही थक मत जाना, सुबह की मंजिल दूर नहीं॥

टूटेंगी बोझिल जंजीरें,
जागेंगी सोयी तक़दीरें,
लूट पे कब तक पहरा देंगी
जंग लगी ख़ूनी शमशीरें ?

रह नही सकता इस दुनिया में जो सबको मंजूर नही,
रात के राही थक मत जाना, सुबह की मंजिल दूर नही !

कठिन-शब्दार्थ

मंज़िल - पड़ाव, लक्ष्य-स्थान
सीना - वक्ष, छाती
घुट घुटकर मरना - असहनीय पीड़ा सहते हुए मरना
जुग - युग
दस्तूर - रीति, क़ायदा
पे - पर
शमशीर - तलवार

तीसरी क्यारी

(प्राचीन पद्य)

1. कबीरदास

कबीर के महान व्यक्तित्व से सारा भारतीय स
प्रभावित है। फिर भी उनके जीवनकाल, जन्म-मृत्यु-
एवं जीवन की प्रमुख घटनाओं के संबंध में सबसे अधिक
भेद है। इनके धर्म-पिता का नाम नीरू और माता का
नीमा था। कबीर का जन्म सवत् 1455 से कुछ
अर्थात् पन्द्रहवीं शती के प्रथम या द्वितीय चरण में हुअ
और मृत्यु सोलहवीं शती के द्वितीय चरण में। उन्होंने
पदों में अपने को जुलाहे के रूप में स्वीकार किया है।
तक वे इसी व्यवसाय द्वारा अपनी आजीविका चलाते
उनका निवास-स्थान काशी तथा मरण-स्थान मगहर
कबीर के दीक्षागुरु स्वामी रामानंद थे।

कबीर के बारे में प्रायः सबकी यह धारणा है कि वे
थे। फिर भी उन्होंने सत्संग एवं आत्मचिंतन द्वारा
शास्त्राभ्यास के पीछे अपना जीवन बितानेवाले पंडितों
अपेक्षा बहुत अधिक जान लिया था। फलतः अपने अनु
के आधार पर वे अपने विचार पद्यरचना द्वारा व्यक्त
करते थे। उनकी ये रचनाएँ अनेक संग्रहों में पायी जात
जिनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण 'बीजक' है। उसे कबी
शिष्य धर्मदास ने सं० 1521 में पूरा कर उनके वचनो
सुरक्षित किया था।

कबीर ने सारे देश का भ्रमण किया था। अतएव उ
रचनाओं में अनेक प्रांतीय भाषाओं के शब्द आये हैं। कहीं-

उनकी भाषा में व्याकरण तथा पिंगल की अशुद्धियाँ भी हैं। यह सब कुछ होते हुए भी उनके अधिकांश पद तथा साखियाँ अपने भाव-गांभीर्य, ऊँची उड़ान, स्पष्ट चित्रण तथा व्यंग्य के कारण अद्वितीय दिखती हैं। उनकी रचनाओं में काव्यकला का पंडिताऊ प्रदर्शन नहीं है। उनमें एक प्रकार का निराला सौंदर्य है, जो उनकी सहज प्रतिभा तथा पैनी निरीक्षणशक्ति के कारण अपने आप फूट पड़ा है।

दोहे

निंदक नियरे राखिये, आंगन कुटी छवाइ ।
बिन साबुन पानी बिना, निरमल करै सुभाइ ॥ 1 ॥
कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूँढ़ै बन माँहि ।
ऐसे घटि घटि राम है, दुनिया देखै नाहिं ॥ 2 ॥
कबिरा आप ठगाइये, और न ठगिये कोइ ।
आप ठग्याँ सुख ऊपजै, और ठग्याँ दुख होइ ॥ 3 ॥
चलती चाकी देखि करि, दिया कबीरा रोइ ।
दुइ पाटन के बीच में, साबित बचा न कोइ ॥ 4 ॥
पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोइ ।
एकै आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होइ ॥ 5 ॥
जेती देखै आतमा, तेता सालिगराम ।
साधू प्रतखि देव है, नहिं पाथरसूँ काम ॥ 6 ॥
गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागौ पाँय ।
बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दियो बताय ॥ 7 ॥

गुरु धोबी सिष कापडा, साबुन सिरजनहार।
सुरति सिला पर धोइये, निकसै जोति अपार॥ 8 ॥
कबिरा हरि के रूठते, गुरु के सरने जाय।
कह कबीर गुरु रूठते, हरि नही होत सहाय॥ 9 ॥
माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर।
कर का मनका डारि दे, मन का मनका फेर॥ 10 ॥
माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवा तो दहुँ दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं॥ 11 ॥
सुख में सुमिरन ना किया, दुख में कीया याद।
कह कबीर ता दास की, कौन सुनै फ़रियाद॥ 12 ॥
माटी कहै कुम्हार को, तू क्या रूँदै मोहिं।
इक दिन ऐसा होयगा, मैं रूँदूँगी तोहिं॥ 13 ॥
साँच बराबर तप नही, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदै साँच है, ताके हिरदै आप॥ 14 ॥
कबिरा संगत साध की, हरै और की व्याधि।
संगत बुरी असाध की, आठों पहर उपाधि॥ 15 ॥
कबिरा खाई कोट की, पानी पिवै न कोइ।
जाइ मिले जब गंग से, सब गंगोदक होइ॥ 16 ॥
सिंहों के नहिं लेंहडे, हंसों की नहिं पाँत।
लालों की नहिं बोरियाँ, साधु न चलैं जमात॥ 17 ॥

पद्य-प्रवेशिका

हद् चलै सो मानवा, बेहद चलै सो साध।
हद बेहद दोनों तजै, ताका मता अगाध ॥ 18 ॥
वृच्छ कबहुँ ना फल भखै, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने, साधुन धरा सरीर ॥ 19 ॥
वैरागी विरकत भला, गिरही चित्त उदार।
दुहूँ चूका रीता पडे, ताकूँ वार न पार ॥ 20 ॥

कठिन-शब्दार्थ

निदक - निंदा करनेवाला
नियरे - पास
कुटी - झोंपड़ी
निरमल - स्वच्छ, पवित्र
सुभाइ - स्वभाव, प्रकृति
कुंडलि - कुंडली, नाभि
बसै - रहती है
माहिं - में
घटि-घटि - घट-घट, प्रत्येक के अंतःकरण में
आप - स्वयं
ठगाइये - ठगा जाना चाहिए
ठग्यॉं - ठगा जाने पर, ठगने पर
जेती - जितनी
तेता - उतना
सालिगराम - शालिग्राम
प्रतखि - प्रत्यक्ष, साक्षात्
पाथरसूँ - पत्थर से
गोविंद - परमात्मा
काके - किसके
बलिहारी - निछावर होना, कुर्बान होना
सिरजनहार - सृजन करनेवाला, बनानेवाला
सुरति - ध्यान, लय
निकसै - निकलती है
जोति - ज्योति, प्रकाश
रूठने - क्रोधित होने पर
सरने - शरण में, आश्रय में
सहाय - सहायक
जुग - युग, पाँच या बारह वर्ष का एक कालमान
फेर - भेद, द्वैतभाव

कर - हाथ
मनका - गुरिया, सुमिरनी
मनुवा - मन
दहुँ - दसो
दिसि - दिशा में
सुमिरन - स्मरण
ता - वह
फ़रियाद - दुहाई, अन्याय-अत्याचार से बचाने की प्रार्थना
रूँदै - रौंदे, कुचले
जाके - जिसके
आप - परमात्मा
साध - सज्जन
हरै - दूर करती है
और - अन्य, दूसरा
व्याधि - पीड़ा, दुख
उपाधि - झंझट
लेंहड़े - झुंड
पात - पंक्ति, क़तार
जमात - भीड़
हद्द - सीमा
बेहद - असीम
ताका - उसका
मता - मत, अभिप्राय
वृच्छ - वृक्ष, पेड़
कबहुँ - कभी
भखै - भक्षण करता है, खाता है
सचै - जमा करके रखती है
परमारथ - परमार्थ, परोपकार
साधुन - साधुओ ने
धरा - धारण किया
विरकत - विरक्त
भला - अच्छा
गिरही - गृहस्थ
दुहूँ चूका रीता पड़े - यदि वैरागी में वैराग्य न हो और गृहस्थ में उदारता न हो, तो दोनों ही व्यर्थ हैं।
ताकूँ वार न पार - उनका फिर कोई ओर-छोर न रहता है।

2. गोस्वामी तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदासजी का जन्म बांदा ज़िले के राजापुर गाँव में सं० 1589 में हुआ था। उनके पिता का नाम आत्माराम दुबे तथा माता का नाम हुलसी था। दीनबंधु पाठक की कन्या रत्नावली के साथ इनका ब्याह हुआ था।

तुलसी को अपने जीवन के प्रारंभिक काल से अंत तक अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। मूल नक्षत्र में पैदा होने के कारण पैदा होते ही माता-पिता ने इनका परित्याग कर दिया। बचपन में अपने उदर की ज्वाला शांत करने के लिए उन्हें दर-दर भटकना पड़ा। अपने पारिवारिक जीवन में आजीविका के लिए कठोर श्रम करना पड़ा था। उनकी अपनी पत्नी के प्रति अत्यंत आसक्ति थी, परंतु पत्नी की मृदु भर्त्सना ने ही उन्हें सांसारिक मोहबंधन से छुड़ाकर राम-भक्ति की ओर प्रेरित किया।

तुलसी ने वेद-वेदांग आदि भारतीय दर्शन और काव्यशास्त्र का गंभीर अध्ययन किया। अध्ययन के अतिरिक्त उन्होंने स्वयं सारे भारत क पैदल भ्रमण भी किया था।

तुलसी राम के भक्त थे। राम को उन्होंने परब्रह्म रूप से स्वीकार किया है। उनकी दृष्टि में राम सारी सृष्टि में व्याप्त हैं। इसी राम को केन्द्र में रखकर इन्होंने अपनी रचनाएँ कीं। उनकी रचनाओं में 'रामचरितमानस' तथा 'विनयपत्रिका' मुख्य हैं। रामचरितमानस में मर्यादापुरुषोत्तम राम के आख्यान के

अतिरिक्त तत्कालीन स्थिति का चित्रण है। उत्तर भारत की धर्मप्राण हिंदू जनता तो गीता से भी अधिक केवल इसी ग्रंथ का पारायण कर पुण्य प्राप्त करने का संतोष कर लेती है। तुलसी ने अपने समय में प्रचलित काव्य की प्रायः सब शैलियों में अधिकारपूर्ण रचनाएँ कीं। हिन्दी साहित्य में इनका स्थान माला के सुमेरु के समान सर्वोपरि है।

इनकी मृत्यु बनारस में असीघाट पर सं० 1680 श्रावण कृष्णा तीज को हुई।

तुलसी

(दोहे)

ऊँची जाति पपीहरा, पियत न नीचो नीर ।
कै जाँचै घनस्याम सो, कै दुख सहै सरीर ॥ 1 ॥

असन बसन सुन नारि सुख, पापिहुँ के घर होय ।
संत समागम राम-धन, तुलसी दुरलभ दोय ॥ 2 ॥

काक-सुता गृह ना करै, यह अचरज बड़ बाय ।
तुलसी केहि उपदेस सुनि, जननि-पिता घर जाय ॥ 3 ॥

सुपथ-कुपथ जीन्हें जनित, स्व-स्वभाव अनुसार ।
तुलसी सिखवत नाहिं सिसु, मूषक हनत मजार ॥ 4 ॥

जथा धरति सब बीजमय, नखत अकास निवास ।
तथा राम सब धरममय, जानत तुलसीदास ॥ 5 ॥

तुलसी तरु फूलत फलत, जेहि विधि कालहि पाय ।
तैसे ही गुन-दोख-गत, प्रगटत समय सुभाय ॥ 6 ॥

जद्यपि अवनि अनेक सुख, तोय तामरस ताल ।
संतत तुलसी मानसर, तदपि तजत न मराल ॥ 7 ॥

बैर-मूल-हर हितवचन, प्रेम-मूल उपकार ।
दो 'हा' सरल सनेह-मय, तुलसी किये विचार ॥ 8 ॥

कलप-बिरिछ को चित्र लिखि, कीन्हे विनय हजार ।
वित्त न पावइ ताहि सो, तुलसी देखु विचार ॥ 9 ॥

काम क्रोध मद लोभ की, जब लगि मन में खान ।
का पंडित का मूरखौ, दोऊ एक समान ॥ 10 ॥

गो-धन गज-धन बाजि-धन, और रतन-धन खान ।
जब आवत संतोख-धन, सब धन धूरि समान ॥ 11 ॥

सत संगति को फल यही, संसय रहई न लेस ।
है असथिर सुचि सरल चित, पावै पुनि न कलेस ॥ 12 ॥

(पद)

ऐसी मूढता या मन की ।
परिहरि राम-भगति सुर-सरिता, आस करत ओसकन की ।

पद्य-प्रवेशिका

धूम समूह निरखि चातक ज्यों, तृषित जानि मति घन की।
नहिं तहँ सीतलता न पानि पुनि, हानि होत लोचन की।
ज्यों गच काँच विलोकि स्येन जड़, छाँह आपने तन की।
टूटत अति आतुर अहार बस, छत बिसारि आनन की।
कहँ लौं कहउँ कुचाल कृपानिधि, जानत हौ गति जन की।
तुलसीदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पन की॥

कठिन-शब्दार्थ

(दोहे)

पपीहरा - चातक
पियत - पीता है
कै - या, अथवा
जाँचै - याचना करता
घनस्याम - बादल
सो - से
असन - भोजन
बसन - वस्त्र, कपडा
पापिहूँ के - पापियो के
सत समागम - सतो का सहवास
राम-धन - रामनामरूपी धन
काकसुता - कौए द्वारा पालित कोयल
गृह - घोसला
बाय - काव्यालंकरण के लिए प्रयुक्त शब्द
केहि - किसका
सुपथ - सन्मार्ग, अच्छा रास्ता
कुपथ - बुरा रास्ता
स्व - अपना
सिसु - शिशु, बालक
मूषक - चूहा
हनत - मारता है
मजार - मार्जार, बिल्ली
नखत - नक्षत्र, तारागण
निवास - स्थान, जगह
फूलत-फलत - फूलते-फलते हैं
जेहि विधि - जिस तरह
कालहि पाय - समय पाकर
गुन-दोख-गत - अंदर रहे हुए गुण-दोष
सुभाय - स्वभाव

तोय तामरस ताल - स्वच्छ जल से भरा हुआ कमल का तालाब

संतत - निरंतर

मानसर - मानसरोवर

तदपि - फिर भी

मराल - हंस

बैर-मूल-हर हितवचन - हितकारक वचन शत्रुता के मूल का अपहरण करनेवाले होते हैं

प्रेम-मूल उपकार - वह उपकार जो प्रेम का कारण होता है

कलप-बिरिछ - कल्पवृक्ष

बित्त - द्रव्य

ताहि सो - उससे

लगि - तक

लेस - थोड़ा

असथिर - अस्थिर, चंचल

सुचि - शुचि, पवित्र

पावै - पाता है

पद—इस मन की ऐसी मूर्खता है कि रामभक्तिरूपी गंगाजी को छोड़कर ओस के कण की आशा करता है। वर्षाकाल में जैसे चातक धुएँ के गुब्बारे को आकाश में देखकर प्यास के मारे उसे अपनी बुद्धि से मेघ समझ लेता है, परंतु न तो वहाँ शीतलता होती है और न पानी, वरन् (धुएँ की ओर देखने से उसके) नेत्रों की हानि होती है। जैसे मूर्ख बाज शीशे में अपने शरीर की परछाई देखकर अपने मुँह की हानि को भूल भोजन की लालसा में बड़ी शीघ्रता से उसपर टूटता है (पर वहाँ भोजन नही होने से उसकी चोंच की ही हानि होती है)। हे कृपासागर ! मैं अपनी इस कुचाल को कहाँ तक कहूँ ? तुम तो अपने इस जन (दास) की दशा जानते ही हो। हे प्रभु ! तुलसीदास का असह्य दुख दूर करो और अपने प्रण की लाज रखो (क्योंकि तुम पतितपावन कहलाते हो)।

3. बिहारीलाल

इनका जन्म सं० 1660 के लगभग ग्वालियर के पा वसुवा गोविंदपुर में हुआ था और ये अनुमानतः सं० 1720 त जीवित रहे। इनका अधिकतर समय जयपुर के मिर्ज़ा राज जयसिंह के दरबार में व्यतीत हुआ। किंवदन्ती के अनुसा इन्होंने जयपुर के महाराज के दरवार में प्रविष्ट होते ही सब पहले अपने एक अनूठे दोहे द्वारा विषयलोलुप राजा को काम् कता से विरत कर उन्हें अपने कर्तव्य का भान कराया था।

विहारी के ग्रन्थों में उनकी एक सतसई उपलब्ध है। उस सात सौ दोहे हैं। शृंगार के ग्रन्थों में जितनी ख्याति इ ग्रंथ की हुई और किसी ग्रंथ की नहीं हुई। फलतः इसक पचासों टीकाएँ रची गयीं जिनमें चार-पाँच टीकाएँ अतिप्रसि हैं। टीकाओं के अतिरिक्त विहारी के छोटे दोहों में समाये हु भावों का उद्‌घाटन करने के लिए अनेक कवियों ने उनप छप्पय, कुंडलियाँ, सवैये आदि भी लिखे हैं।

बिहारी की रचना का पूर्ण चातुर्य उनके अनुभवों वे विधान में दृष्टिगोचर होता है। अनेक स्थलों पर इनकी योजना की निपुणता और उक्तिकुशलता के दर्शन होते हैं इनमें कल्पना की समाहार-शक्ति के साथ भाषा की समास शक्ति अद्‌भुत थी। इसलिए ये अपने छोटे-छोटे मुक्तक-जैसे दोहों में अन्य शृंगारिक कवियों की अपेक्षा सबसे अधिक सफल हुए हैं।

बिहारी के दोहे

कीनैं हुँ कोटिक जतन, अब कहि काढ़ै कौनु ।
मो मन मोहन-रूप मिलि, पानी मैं कौ लोनु ॥ 1 ॥

जगतु जनायौ जिहि सकलु, सो हरि जान्यौ नाँहि ।
ज्यौ आँखिनु सबु देखियै, आँखि न देखी जाँहि ॥ 2 ॥

दीरघ साँस न लेहु दुख, सुख साईंहिं न भूलि ।
दई दई क्यों करतु है, दई दई सु कबूलि ॥ 3 ॥

कहा भयौ जौ बीछुरे, मो मन तो मन साथ ।
उड़ी जात कितहूँ तऊ, गुड़ी उड़ाइक हाथ ॥ 4 ॥

कागद पर लिखत न बनत, कहत सँदेसु लजात ।
कहिहै सबु तेरौ हियौ, मेरे हिय की बात ॥ 5 ॥

कैसे छोटे नरनु तै, सरतु बड़नु के काम ।
मढ़यो दमामौ जात क्यौ, कहि चूहे कै चाम ॥ 6 ॥

घरु घरु डोलत दीन ह्वै, जनु जनु जाचतु जाइ ।
दियैं लोभ-चसमा चखनु, लघु पुनि बड़ौ लखाइ ॥ 7 ॥

बड़े न हूजै गुननु बिनु, बिरद-बड़ाई पाइ ।
कहत धतूरे सौं कनकु, गहनौ गढ्यौ न जाइ ॥ 8 ॥

संगति सुमति न पावही, परे कुमति कै धंध ।
राखौ मेलि कपूर में, हीग न होइ सुगंध ॥ 9 ॥

सबै सुहाएई लगैं, बसै सुहाएँ ठाम ।
गोरे मुँह बेंदी लसैं, अरुन पीत सित स्याम ॥ 10 ॥

संगति दोषु लगै सबनु, कहे ति साँचे बैन ।
कुटिल-बँक-भ्रुव-संग भए, कुटिल बंक गति नैन ॥ 11 ॥

नर की अरु नल-नीर की, गति एकै करि जोइ ।
जेतौ नीचो ह्वै चलै, तेतौ ऊँचौ होइ ॥ 12 ॥

गुनी-गुनी सबकै कहैं, निगुनी गुनी न होतु ।
सुन्यौ कहूँ तरु अरक तै, अरक-समानु उदोतु ॥ 13 ॥

बसै बुराई जासु तन, ताही कौ सनमानु ।
भलौ भलौ कहि छोड़ियै, खोटै ग्रह जपु दानु ॥ 14 ॥

मरतु प्यास पिंजरा पर्यौ, सुआ समै कै फेर।
आदरु दै दै बोलियतु, बाइसु बलि की बेर ॥ 15 ॥
नीच हियै हुलसे रहै, गहे गेंद के पोत।
ज्यों-ज्यों माथे मारियत, त्यों-त्यों ऊँचे होत ॥ 16 ॥

कठिन-शब्दार्थ

कीनै हुँ - करने पर भी
जनायौ - जाना गया
जिहि - जिसके द्वारा
देखियै - देखा जाता है
देखी जाँहि - देखी जाती है
दीरघ सास - दुख में ली जानेवाली लंबी साँस
साइहि - स्वामी को
दई - दैव
कबूलि - अंगीकृत कर, सहन कर

जो विपत्ति दैव ने दी है उस विपत्ति में तू 'हा दैव!' क्यो कर रहा है? उसे धैर्य धरकर सहन कर। तू दुख में लबी साँस न ले और सुख में स्वामी को न भूल।

कित हूँ - किसी ओर, उड़ाइक - उड़ानेवाला; गुड़ी - गुड्डी, पतंग

ऊपर की पंक्ति सरल है। उडती हुई पतंग चाहे कही किसी ओर चली जाय, तो भी वह उड़ानेवाले के हाथ मे ही रहती है।

लजात - लज्जित होता है
कहिहै - कह देगा
हियौ - हृदय
नरनु तै - मनुष्यो से
सरतु - चल सकता है
दमामौ - बड़ा नगाड़ा, जो ऊँट और हाथी पर लादकर ले जाया जाता है
दीन ह्वै - दीन होकर, गिड़गिड़ाता हुआ
लखाइ - लक्षित होता है, जान पड़ता है

लोभी घर-घर दीन होकर गिड़गिड़ाता हुआ फिरता है और प्रत्येक सामान्य व्यक्ति से जाकर याचना करता है, क्योंकि उसे लोभरूपी चश्मा आँखो पर दिये रहने के कारण लघु प्राणी भी बड़ा जान पड़ता है।

बिरद-बड़ाई पाइ - प्रशंसासूचक नाम की बड़ाई पाकर
परे कुमति कै धँध - कुमति की झंझट में पड़े हुए
राखौ मेलि - मिलाकर रखो
सुहाएई लगै - अच्छे लगते हैं
बेंदी - बिंदी
लसै - सुशोभित होती है
अरुन - लाल
पीत - पीली
सित - श्वेत, सफ़ेद
कहे ति साँचे बैन - सयानो ने जो वचन कहे है, सो सच्चे वचन हैं।
कुटिल - टेढ़ी आकृतिवाली
बक - वक्र, टेढ़े स्वभाववाली, छली
कुटिल . नैन - कुटिल तथा कपटशील भ्रुकुटि के संग से नयन भी कुटिल तथा वक्र गतिवाले हो गये हैं।
नल-नीर - फुहारे के नल का पानी
सबकै कहैं - सबके कहने से
कनकु - सोना, धतूरा
गढ़्यौ न जाइ - गढ़ा न जाता
तरु अरक - तरु-रूपधारी अर्क अर्थात् मदार का वृक्ष
अरक - अर्क, सूर्य
उदोतु - प्रकाश

[जिसके शरीर में बुराई रहती है उसीका इस संसार में सम्मान होता है। देखो, भला ग्रह तो भला कहकर छोड़ दिया जाता है, पर खोटे ग्रह के आने पर जप, दान इत्यादि होते हैं।]

सुआ - तोता
समै कै फेर - समय के फेर से, अवसर विशेष उपस्थित होने के कारण
आदरु दै दै बोलियतु - आदर दे-देकर, अर्थात् बड़े आदरपूर्वक पुकारा जाता है
बाइसु - वायस, कौआ
बलि की बेर - बलि-प्रदान के अवसर पर
पोत - प्रकृति, स्वभाव
हुलसे रहै - फूले रहते है

नीच आदमी गेंद का स्वभाव धारण किये हुए सदा निरादृत होने पर भी हृदय में फूले रहते हैं। ज्यो-ज्यो वे माथे पर मारे जाते है, निरादृत होते है, त्यो-त्यो ऊँचे होते हैं, अर्थात् अपने को श्रेष्ठ मानते है।

4. रहीम

रहीम का जन्म सं० 1610 में अकबर के मंत्री बैरामखाँ के यहाँ हुआ। बैरमखाँ अकबर के बाल्यकाल में उनका अभिभावक भी था। राजवंश में पैदा होने के कारण रहीम को उस समय में प्रचलित प्रायः सब भाषाओं की शिक्षा दी गयी। इसलिए ये संस्कृत, अरबी, फ़ारसी और हिन्दी के पूर्ण विद्वान बने। बहुभाषाविज्ञता के साथ इनकी कविता की ओर भी विशेष रुचि थी। रहीम स्वभावतः उदार थे। कुछ लोग इनकी दानशीलता की तुलना कर्ण-जैसे दानवीर से करते हैं। जो भी हो, इनके द्वार पर से कोई भी याचक कभी निराश नहीं लौटता था। कवियों तथा कलाकारों का ये बड़ा सम्मान करते थे। इनकी सभा विद्वानों तथा कवियों से सदा भरी रहती थी।

अकबर के समय में रहीम उसकी सेना के प्रधान सेनानायक और मंत्री-जैसे गौरवपूर्ण पदों पर आसीन थे। इन्हें अनेक बार बड़े-बड़े युद्धों में भी जाना पड़ा था। इससे इनका व्यावहारिक अनुभव बड़ा गहरा बना। ऐसे अनुभवों के मार्मिक पक्ष को ग्रहण कर संसार के बीच रहकर उन्होंने जो संवेदना प्राप्त की उसी की व्यंजना अपने दोहों में की है। उसमें जीवन की सच्ची परिस्थितियों का मार्मिक अनुभव है। दोहों के सिवाय रहीम ने कवित्त, सवैया, सोरठा और बरवै आदि में अपनी काव्यकला का चमत्कार दिखाया है। बरवै के तो ये एक प्रकार से जन्मदाता माने जाते हैं। इनकी रचनाओं में 'रहीम दोहावली', 'बरवै नायिका-भेद', 'शृंगार-सोरठा', 'रासपंचाध्यायी' इत्यादि प्रसिद्ध हैं।

रहीम के दोहे

दीन लखै सब जगत को, दीनहिं लखै न कोइ ।
जो रहीम दीनहिं लखै, दीनबंधु सम होइ ॥ 1 ॥

दुख नर सुनि हाँसी कहैं, नाहिं धरावत धीर ।
कही सुनै सुनि दुख हरैं, रहिमन वे रघुबीर ॥ 2 ॥

कमला थिर न रहीम कहु, यह जानत सब कोइ ।
पुरुष पुरातन कै वधू, क्यों न चंचला होइ ॥ 3 ॥

तरुवर फल नही खात है, सरवर पियत न पानि ।
कहि रहीम परकाज हित, संपति सुचहिं सुजान ॥ 4 ॥

मान-सहित विष खाइकै, संभु भये जगदीस ।
बिना मान अमृत पियो, राहु कटायो सीस ॥ 5 ॥

धनि रहीम जल पंक कहँ, लघु जिय पियत अघाइ ।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाइ ॥ 6 ॥

रहिमन दानि दरिद्रतर, तऊ जाचिबे जोग।
ज्यों सरितन सूखी परे, कुआँ खनावत लोग ॥ 7 ॥

रहिमन धागा प्रेमका, मत तोरउ चटकाइ।
टूटे से फिरि ना मिलै, मिले गाँठि परि जाइ ॥ 8 ॥

छोटे काम बड़े करै, तौ न बड़ाई होइ।
ज्यो रहीम हनुमंत कहँ, गिरधर कहै न कोइ ॥ 9 ॥

जो रहीम गति दीप कै, कुल कपूत कै सोइ।
बारे उजियारो करै, बडे अंधेरो होइ ॥ 10 ॥

सर सूखे पंछी उडै, औरे सरन समाहिं।
मीन दीन बिनु पच्छ के, कहु रहीम कहँ जाहिं ॥ 11 ॥

जो विषया संतन तजी, मूढ ताहि लपटात।
ज्यो नर डारत बमन करि, स्वान स्वादु सों खात ॥ 12 ॥

रहिमन विद्या बुधि नही, नही धरम अरु दान।
जन्म वृथा भू पर धरेउ, पसु, बिनु पूँछ विषान ॥ 13 ॥

रहिमन माँगत बडेन कै, लघुता होति अनूप।
बलि-मख माँगन हरि गये, धरि बावन कर रूप ॥ 14 ॥

मथत मथत माखन रहै, दही मही बिलगाइ ।
रहिमन सोइ मीत है, भीर परे ठहराइ ॥ 15 ॥

कठिन-शब्दार्थ

दीन - धर्म, मज़हब
दीनहि - ग़रीब को
दीनबधु - ईश्वर, परमात्मा
कमला - लक्ष्मी
थिर - स्थिर
पुरुषपुरातन - विष्णु , बूढा व्यक्ति
चंचला - अस्थिर , चंचल मनवाली
[रहीम ने इस दोहे में वृद्ध-विवाह की बुराई पर भी संकेत किया है ।]
सरवर - सरोवर, तालाब
सुचहिं - एकत्रित करते हैं
सुजान - सज्जन
'धनि...जाइ' - रहीम कहते है कि कीचड़युक्त जल को धन्य है, जो छोटा होता है , फिर भी उसका पानी पीकर छोटे जीव तो तृप्त होते हैं । विशाल समुद्र की कौन-सी बड़ाई है, जिसके किनारे पर जाकर सारा संसार प्यासा लौटता है ?
दानि - दान देनेवाला
दरिद्रतर - अत्यंत ग़रीब
तऊ - फिर भी
जाचिबे जोग - याचना करने योग्य
खनावत - खुदवाते है
गति - हालत
कुल कपूत - कुपुत्र
बारे - जलाने पर
उजियारो - प्रकाश
बड़े - बुझाने पर, बड़ा होने पर
[कुपुत्र के पैदा होने पर तो पुत्र-जन्म का आनंद रहता है, मगर ज्यों-ज्यो वह बड़ा होवे, उससे कुल ही डूब जाता है ।]
समाहिं - जाते है , समावेश होते हैं
मीन - मछली
पच्छ - पंख
विषान - सीग
बड़ेन कै - बड़े आदमियों के
लघुता - तुच्छता, क्षुद्रता
अनूप - अद्भुत
मख - यज्ञ
मही - मट्ठा
मीत - मित्र

5. वृंद

कविवर वृंद का जन्म सं० 1700 की आश्विन शुक्ला प्रतिपदा गुरुवार को मेड़ता (जोधपुर) में हुआ और सं० 1780 में इनकी मृत्यु हुई। इनके पिता कविरूपजी स्वयं डिंगल भाषा के अच्छे कवि थे। अतएव काव्य-कला का संस्कार इन्हें अपने पिता से विरासत-रूप से प्राप्त हुआ। बचपन में इन्हें इनके पिता ने काशी में विद्याभ्यास के लिए भेज दिया था। वहाँ इनके गुरु तारापंडित ने संस्कृत और पिंगल का अच्छा ज्ञान कराया। वहाँ लौटने पर कृष्णगढ़ के महाराज मानसिंह इनके काव्य-कौशल से बहुत प्रभावित हुए। फलतः उन्होंने इन्हें अपने दरबार में रख लिया। वहाँ नियुक्ति होने पर बीच-बीच में ये अन्य दरबारों में भी जाया करते थे। पर इन्होंने अपने जीवन के अंतिम वर्ष कृष्णगढ़ में ही व्यतीत किये।

वृंद ने सत्यस्वरूप, रूपक-वचनिका, अलंकार-सतसई, श्रृंगारशतक आदि कई ग्रंथ लिखे। परंतु इन सब में इनकी 'वृंद विनोद सतसई' जो 'वृंद-सतसई' के नाम से प्रसिद्ध है, अधिक प्रसिद्ध है। वृंद की रचना में कूटों तथा उपदेशों का प्रायः अभाव-सा है। इनकी भाषा सलिल-प्रवाह की तरह सर्वत्र एक-सरीखी सरल है। उसमें सूक्तियों की प्रचुरता है। सूक्तियों के योग्य जिन गुणों की अपेक्षा होती है, प्रायः वे सब इनकी सूक्तियों में पाये जाते हैं। भाषा की सरलता, मुहावरों की प्रचुरता और कहावतों का समुचित प्रयोग ये सब बातें इनकी सूक्तियों में मिलती हैं।

वृंद के दोहे

बुरे लगत सिख के वचन, हिए विचारौ आप ।
करुवी भेषज बिन पिये, मिटै न तन कौ ताप ॥ 1 ॥

विद्या धन उद्यम बिना, कहौ जु पावै कौन ।
बिना डुलाए ना मिलै, ज्यों पंखे को पौन ॥ 2 ॥

अति परचै ते होत है, अरुचि अनादर भाय ।
मलयागिरि की भीलनी, चंदन देत जराय ॥ 3 ॥

स्वारथ के सब ही सगे, बिन स्वारथ कोउ नाहिं ।
सेवे पंछी सरस तरु, निरस भए उड़ि जाहिं ॥ 4 ॥

सज्जन तजत न सुजनता, कीन्हु दोष अपार ।
ज्यौ चंदन छेदे तऊ, सुरभित करहिं कुठार ॥ 5 ॥

करै बुराई सुख चहै, कैसे पावै कोइ ।
रोपै बिरवा आक को, आम कहाँ ते होइ ॥ 6 ॥

दुर्जन के संसर्ग तै, सज्जन लहत कलेस।
ज्यौं दसमुख अपराध तै, बंधन लह्यौ जलेस ॥ 7 ॥

कन-कन जोरै मन जुरै, खाते निबरै सोय।
बूंद बूंद ज्यौ घट भरै, टपकत रीतो होय ॥ 8 ॥

कारज धीरे होतु है, काहे होत अधीर।
समय पाय तरुवर फरै, केतक सीचौ नीर ॥ 9 ॥

क्यों कीजै ऐसो जतन, जाते काज न होय।
परबत पै खोदै कुँआ, कैसे निकसै तोय ॥ 10 ॥

स्रम ही तै सब मिलत है, बिन स्रम मिले न काहिं।
सीधी अंगुरी घी जम्यो, क्यौं हूँ निकरै नाहि ॥ 11 ॥

कहा करै कोउ जतन, प्रकृति न बदलै कोइ।
सानै सदा सनेह मै, जीभ न चिकनी होइ ॥ 12 ॥

भेष बनावै सूर कौ, कायर सूर न होय।
खाल उढावै सिंह की, स्यार सिंह नहिं होय ॥ 13 ॥

सब तैं लघु है मांगिबौ, जा में फेर न फार।
बलि पै जांचत ही भए, बावन तन करतार ॥ 14 ॥

बड़े अनीति करै तऊ, बुरो कहै नहिं कोय।
बालि हन्यो अपराध बिनु, ताहि भजे सब कोय ॥ 15 ॥

कठिन-शब्दार्थ

भेखज - भेषज, औषध
तन कौ ताप - शरीर का ज्वर
डुलाए - हिलाये
पौन - पवन, हवा
परचै - परिचय
अरुचि - विरक्ति, घृणा
भाय - भाई
देत जराय - जला देती है
सगे - संबंधी
सेवे - सेवन करता है, रहता है
सरस - फला-फूला
निरस भए - सूख जाने पर
कीन्हेहु - करने पर भी
अपार - बेशुमार
रोपै - बोता है
बिरवा - वृक्ष
आक - मदार
लहत - पाता है
कलेस - क्लेश, दुख
दसमुख - रावण
जलेस - समुद्र
जोरै - जोड़ने पर, संचय करने पर

जुरै - इकट्ठा होता है
निबरै - समाप्त होता है
रीतो - ख़ाली
काहे - क्यो
फरै - फलता है
केतक - कितना ही
नीर - पानी
जातै जिससे
तोय - पानी
स्रम - श्रम, मेहनत
जतन - प्रयत्न
प्रकृति - स्वभाव
सानै - गूँधता है, माँडता है
सनेह - तेल, घी आदि स्निग्ध वस्तुएँ
सूर - शूर, वीर
जाँचत ही - माँगते ही
करतार - कर्ता, ईश्वर
बावन तन - बावन अंगुल के शरीरवाले, वामन, बौने
तऊ - तथापि
हन्यो - हनन किया, मारा
भजे - भजते हैं

6. गुरु नानकदेव

गुरु नानकदेव का जन्म लाहौर के पास तलवंडी नामक गाँव में सं० 1526 की वैशाख शुक्ला तृतीया को हुआ। आजकल यह स्थान 'नानकाना' के नाम से प्रसिद्ध है। बचपन में नानक अपने गाँव के पास के घने जंगलों में घंटों शांत चित्त से बैठकर कुछ न कुछ सोचा करते। बचपन में ही इन्हें पंजाबी, हिन्दी, संस्कृत और फ़ारसी की शिक्षा दी गयी, परंतु पुस्तकों की अपेक्षा एकांतवास और चिंतन की ओर ही इनकी विशेष रुचि रही।

नानकदेव सिख धर्म के मूल प्रवर्तक थे। उनके बाद नौ गुरुओं ने उनके द्वारा प्रचलित धर्म का प्रचार किया। नानकदेव की रचनाओं में उनके धार्मिक सिद्धांत तथा उनकी प्रमुख साधना नामस्मरण का परिचय सर्वत्र मिलता है। इसके अतिरिक्त उनकी रचनाओं में एकेश्वरवाद, परमात्मा की सर्व-व्यापकता के प्रति एकांत निष्ठा, विश्वप्रेम, नाम की महत्ता में पूर्ण विश्वास आदि बातों का प्राधान्य है। नानकदेव झूठी सांसारिक विडंबनाओं के प्रबल विरोधी थे तथा नम्रता एवं सहृदयता के सच्चे समर्थक थे। यह बात उनकी सर्वप्रसिद्ध रचना 'जपुजी' से प्रकट होती है। इनकी कथन-शैली में विस्तार की अपेक्षा समास-पद्धति की प्रचुरता है।

इनका देहावसान सं० 1595 की आश्विन शुक्ला दशमी को कर्तारपुर में हुआ।

नानक के पद

(1)

गगनमै थालु रवि चंदु दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती ।
धूपु मनआनलओ पवणु चवरो करे सगल बनराइ फूलंत जोती ।
कैसी आरती होइ भव खंडना तेरी आरती अनहदा सबदा बाजंस भेरी।
सहस तब नैन नन नैन हहि तोहि कउ सहस मूरति नना एक तोहि ।
सहस पद विमल नन एक पद गंध बिनु सहस तव गंध इव चलत मोहि ।
सम महि जोति जोति है सोइ तिस दै जानणि सममहि चानगु होइ ।
गुरु साखी जोति परगटु होइ जो तिसु भावै सु आरति होइ ।
हारि चरण कवल मकरंद लोभित मनो अनदिनो मोहि आहि पिआसा।
कृगाजलु देहि नानक सारिंग कउ होइ जाते तेरै नाइ वासा ॥

(2)

भरिऐ हथु पैरु तनु देह । पाणी धोतै उतरसु खेह ॥
मूत पलीती कपड़ु होइ । दे साबुणु लईऐ ओहु धोइ ॥
भरिऐ मति पापा कै संगी । ओहु धोपै नावै कै रंगि ॥

पुरनी पापी आखणु नाहि। करि-करि करणा लिखि लै जाहु ॥
आपे बीजि आपे ही खाहु। नानक हुकमी आवहु जाहु ॥

भावार्थ

(1) आकाश-मडल थाल है, उसमें सूर्य तथा चंद्र दोनो दीपक बने हुए हैं तथा ताराओं के मोती जड़े हुए हैं। मलयानिल तेरी धूप है, पवन तुझे चॅवर डुलाता है और हे ज्योति-स्वरूप! सारे कानन तेरे फूल है। हे भव-खंडन (जन्म-मरण से छुड़ानेवाले)! यह तेरी कैसी आरती है, जहॉ कि अनहद नाद की तुरही बज रही है। तेरी सहस्रो ऑखें हैं, फिर भी तू चक्षुविहीन है; तेरे सहस्रो रूप हैं, फिर भी तू रूपविहीन है। तेरे सहस्रो निर्मल चरण है, फिर भी तू बिना चरण का है, तेरी सहस्रो नासिकाएँ हैं, फिर भी तू बिना घ्राण का है। मैं तेरी इस लीला पर मुग्ध हूँ, क्योकि सब तेरी ज्योति से ज्योति पा रहे हैं, तेरे ही प्रकाश से प्रकाशित हो रहे हैं। गुरु के आदेश से वह ज्योति प्रकट होती है, जो तुझे प्रिय लगे वही तेरी आरती है। तेरे चरणारविंदो के मकरंद से मेरा मनरूपी मधुकर लुब्ध हो गया है, मुझे उस मकरंद की प्यास लगी रहती है। इस नानक-चातक को अपना कृपा-जल दे दे जिससे वह तेरे नाम में रम जाये।

(2) जब हाथ, पैर और शरीर के दूसरे अंग धूल से सन जाते हैं, तो वे पानी से धोने पर साफ हो जाते है। मूत्र से जब कपड़े गंदे हो जाते है, तो साबुन लगाकर उन्हे धोया जाता है। ऐसे ही यदि हमारा मन पापो से मलिन हो जाय, तो वह इष्टदेवता के नाम के प्रेम-भाव से स्वच्छ हो सकता है। केवल कह देने से मनुष्य न पुण्यात्मा बन जाते है, न पापी; किंतु वे तुम्हारे कर्म हैं जिन्हे तुम अपने साथ लिखने जाते हो। तुम्हारे कर्म तुम्हारे साथ-साथ जाते हैं। स्वयं जैसा बोते हो वैसा खाते हो। नानक कहते है—यह तुम्हारा आवागमन उसकी आज्ञा से ही हो रहा है।

7. दादू दयाल

दादू दयाल का जन्म गुजरात प्रदेश के अहमदावाद नगर में फाल्गुन शुक्ला 2, बृहस्पतिवार सं. 1601 को हुआ और उनका देहावसान राजस्थान प्रांत के नराणा गाँव में ज्येष्ठ वदी, शनिवार सं० 1700 को हुआ। वहाँ इनके अनुयायियों का प्रधान मठ या 'दादूद्वारा' आज भी वर्तमान है।

तीस साल की अवस्था तक दादू का अधिकतर समय देशाटन, सत्संग, चिंतन, मनन एवं कतिपय साधनाओं में व्यतीत हुआ। उसी समय उन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर एक 'ब्रह्मसंप्रदाय' नाम की संस्था का सूत्रपात किया। यही संप्रदाय आगे चलकर 'परब्रह्मसंप्रदाय' और फिर 'दादू पंथ' के रूप में विख्यात हुआ।

दादूदयाल की आध्यात्मिक अनुभूति बड़ी गहरी तथा सच्ची थी तथा उसे व्यक्त करने में भी वे निपुण थे। उनकी रचनाओं में न केवल उनकी सिद्धांतों एवं साधनाओं का परिचय मिलता है, प्रत्युत उनके एक-एक शब्द से उनके संत-हृदय का भी स्पष्ट पता चलता है। अपने इन्हीं गुणों के कारण वे केवल दादू से 'दादू दयाल' कहलाने लगे थे।

दादू दयाल की रचनाओं की भाषा मुख्यतः राजस्थानी है, परंतु उसमें गुजराती, सिंधी, पंजाबी, मराठी, फ़ारसी आदि के भी उदाहरण मिलते हैं। इनकी रचनाओं का संग्रह 'अंगवंधू' के नाम से प्रसिद्ध है। पदों एवं साखियों के अतिरिक्त इनकी एक और रचना 'काया वेलि' के नाम से भी प्रसिद्ध है।

दादू दयाल

दादू सोचि करै सो सूरिवाँ, करि सोचै सो कूर ।
करि सोच्यां मुख स्याम है, सोचि कियां मुख नूर ॥
दादू दोनौ भाई हाथ पग, दोनौं भाई कान ।
दोनों भाई नैन हैं, हिन्दू मुसलमान ॥
दादू आप चिणावै देहुरा, तिसका करहि जतन ।
प्रत्यख परमेसुर किया, सो भानै जीव-रतन ॥
निगुणां गुण मानै नही, कोटि करै जो कोइ ।
दादू सब कुछ सौपिये, सो फिर वैरी होइ ॥
दादू कनक कलस विष सूँ भरया, सो किम आवै काम ।
सो धनि कूटा चाम का, जामै अमृत राम ॥
सुख का साथी जगत सब, दुख का नाही कोई ।
दुख का साथी सांइयाँ, दादू सतगुर होइ ।
दादू राम तहँ मैं नाही, मै तहँ नाही राम ।
दादू महल बारीक है, द्वैकों नाही ठाम ॥

पद्य-प्रवेशिका

गोव्यंद गोसांई तुम्हे अम्हँचा ग्यान ।
तुम्हे अम्हँचा देव, तुम्हे अम्हँचा ध्यान ॥
तुम्हे अम्हँची पूजा, तुम्हे अम्हँचा पाती ।
तुम्हे अम्हँचा तीर्थ, तुम्हे अम्हँचा जाती ॥
तुम्हे अम्हँचा सील, तुम्हे अम्हँचा संतोख ।
तुम्हे अम्हँची मुकति, तुम्हे अम्हँचा मोख ॥

कठिन-शब्दार्थ

सोचि करै - सोचकर करता है
सूरिवाँ - शूर, पुरुषार्थी
करि सोचै - पीछे सोचता है
कूर - मूर्ख, कायर
स्याम - काला, कलंकित
नूर - उज्ज्वल
चिणावै - चुनता है, बनाता है
देहुरा - मंदिर
जतन - रक्षा
प्रत्यख - प्रत्यक्ष, साक्षात्
सो - वह
भानै - तोड़ता है, मारता है

जीव-रतन - जीवरूपी रत्न
निगुणा - कृतघ्न
गुण - उपकार
कोटि करै - करोड़ यत्न करे
किम - कैसे
सो - वह
धनि - धन्य है
कूटा चाम का - चमड़े का कुप्पा
तुम्हे - तुम ही
अम्हँचा, अम्हँची - हमारा-हमारी (मराठी प्रयोग)

8. मलूकदास

मलूकदास का जन्म इलाहाबाद ज़िले के कड़ा नामक गाँव में वैशाख वदी 5, सं० 1631 में हुआ। इनके पूर्वज खत्री जाति के कक्कड़ थे और इनका प्यार का नाम मल्लू था। प्रारंभ से ही ये इतने अधिक भावप्रवण तथा कोमल हृदयवाले थे कि यदि खेलते समय इन्हें मार्ग या गली में काँटा या कंकड मिल जाता, तो उसे दूसरों को कष्ट से वचाने के लिए कहीं दूसरी ओर डाल देते थे।

प्रसिद्धि के अनुसार इन्होंने एक सौ आठ वर्ष की आयु पायी थी और अंतिम वर्षों तक ये अपना गार्हस्थ्य-जीवन बिताते रहे। अन्य संत कवियों की तरह इनकी शिक्षा के विषय में भी कुछ पता नहीं चलता, पर इनकी रचनाओं की संख्या नौ वतायी जाती है जो सब अप्रकाशित हैं। इनकी फुटकर वानियों का एक संग्रह 'मलूकदासजी की वानी' के नाम से बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ है। इनकी रचनाओं में इनके अटल विश्वास एवं विश्वप्रेम की झलक सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। संत मलूकदासजी स्वभावतः निर्भीक एवं निश्चिंत प्रकृति के व्यक्ति थे। इनकी रचनाओं मे क्लिष्ट शब्दों का प्रायः अभाव-सा है।

मलूकदास

मलुका सोई पीर है, जो जानै पर-पीर ।
जो परपीर न जानही, सो काफ़िर बेपीर ॥ 1 ॥

जो तेरे घट प्रेम है, तो कहि कहि न सुनाव ।
अंतर्जामी जानिहै, अतरगत का भाव ॥ 2 ॥

मक्का मदिना द्वारका, बद्री अरु केदार ।
बिना दया सब झूठ है, कहै मलूक विचार ॥ 3 ॥

मलूक वाद न कीजिये, क्रोधै देहु बहाय ।
हार मान अनजान तें, बक बक मरै बलाय ॥ 4 ॥

कोई जीति सकै नही, यह मन जैसे देव ।
याके जीते जीत है, अब मै पायो भेव ॥ 5 ॥

कठिन-शब्दार्थ

सोई - वही
जानै - जानता है
पीर - सिद्ध, धमगुरु
पर-पीर - दूसरे की पीड़ा

जानही - जानता है
काफिर - नास्तिक, हरामख़ोर
बेपीर - बेदर्द
घट - हृदय
अंतर्जामी - घट-घटवासी, अतःकरण में रहनेवाला परमात्मा
अंतरगत - हृद्गत, हृदय में रहा हुआ
भाव - विचार
वाद - चर्चा ; शास्त्रार्थ
अनजान - अज्ञात, बिना जाना-पहचाना हुआ
बक बक - बकवास
बलाय - झंझट, रोग, व्याधि
याके - इसके
भेव - भेद
